आधुनिक रूसी कविताएं-१

आधुनिक रूसी कविताएँ-१

सम्पादक और भूमिका-लेखक
नामवर सिंह

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मूल्य रु० १२.००

प्रथम संस्करण १९७८

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली ११०००२

मुद्रक गजेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस
नवीन शाहदरा दिल्ली ११००३२

आवरण नरेन्द्र श्रीवास्तव

यह योजना

अक्टूबर क्रान्ति की इस साठवी वर्षगाठ के अवसर पर 'आधुनिक रूसी कविताए' का पहला भाग प्रकाशित करते हमे प्रसन्नता हो रही है। भारत सोवियत मैत्री की निरन्तर प्रगाढता की दिशा मे हमारी ओर से, यह एक विनम्र साहित्यिक उपहार है। हमारा विश्वास है कि कविता के द्वारा यह मैत्री और भी स्थायी हो सकती है।

इस योजना के अन्तर्गत अठारह आधुनिक रूसी कवियो की प्रतिनिधि कविताएँ प्रकाशित करने का विचार है। इस काव्यमाला के कुल तीन भाग होंगे और प्रत्येक भाग मे छह छह कवि सम्मिलित किये जायेंगे। इस भाग के बाद शेष दो भाग भी शीघ्र ही क्रमश प्रकाशित होगे।

योजना यह है कि हिन्दी के कृती कवियो को अनुवाद के लिए आमन्त्रित किया जाये, ताकि अनुवाद सृजनशीलता से युक्त हो। आदश स्थिति तो यही है कि हिन्दी-अनुवाद मूल रूसी भाषा से ही किया जाये, और वह दिन दूर नही जब यह आदश यथाथ होगा। किन्तु वतमान स्थिति म अँग्रेजी-अनुवाद पर निभर रहने के लिए विवश होना पडा है। इस आपद्धम को स्वीकार करने के पीछे आत्मसन्तोष के लिए यही तक है कि मूल भाषा की अपेक्षा उस भाषा पर अधिकार अधिक आवश्यक है जिसमे अनुवाद होना है, इसीलिए रूसी भाषाविद् हिन्दी जाननेवालो की अपेक्षा रूसी न जाननवाले हिन्दी-कवियो को इस काय के लिए अधिक उपयुक्त माना गया। फिर भी हमने प्रयत्न किया है कि हिन्दी अनुवाद मूल रूसी से दूर न चला जाये और इसके लिए हमने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के रूसी भाषा सस्थान के शिक्षक श्री हेमचन्द्र पाण्डेय का यथा-सम्भव परामश लिया है और इसके लिए हम पाण्डेयजी के कृतज्ञ है।

इस सकलन का अनुवाद काय हिन्दी के तीन कृती कवियो ने सम्पन्न किया है सवश्री भारतभूषण अग्रवाल, राजीव सक्सेना और श्रीकान्त वर्मा। योजना

के अनुसार प्रत्येक कवि ने दो दो रूसी कवियो की कविताओ का अनुवाद किया है। हम उनके सहयोग के लिए हृदय से आभारी हैं। हमे खेद है कि आज इस पुस्तक को प्रकाशित देखने के लिए कवि श्री भारतभूषण अग्रवाल हमारे बीच नही है। यह पुस्तक एक प्रकार से उनकी दिवगत आत्मा के प्रति हमारी मूक श्रद्धाजलि भी है।

इन कविताओ के मूल रूसी पाठ तथा उसके अँग्रेजी अनुवाद सुलभ कराने के लिए हम सोवियत लेखक सघ के कृतज्ञ है। वस्तुत लेखक सघ के सहयोग के बिना यह काय सम्भव भी न होता। इस काय मे सोवियत लेखक सघ की श्रीमती मिरियम सलगानिक का सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है और इसके लिए हम उनका आभार मानते हैं।

अन्त मे हम इस काव्यमाला के सम्पादक और भूमिका-लेखक डॉ० नामवर सिंह के प्रति आभार प्रकट करना अपना कत्तव्य समझते हैं जिनके तत्पर सयोजन से यह योजना फलीभूत हो रही है।

आशा है हिन्दी के लेखक और काव्य-प्रेमी इस अनुवाद को अपनाकर हमारा उत्साह बढायेंगे।

शीला सन्धू

अनुक्रम

भूमिका

आधुनिक रूसी कविता का आरम्भ

नामवर सिंह

आधुनिक रूसी कविता का आरम्भ

'चौंसठ रूसी कविताएँ' (१९६४) की भूमिका मे बच्चन जी ने लिखा है कि ' रूसी कविता से मेरा प्रथम परिचय मयाकोव्स्की की रचनाओ द्वारा ही हुआ।" यही बात, जहा तक मेरी जानकारी है, हिन्दी के अधिकाश कवियो के लिए भी कही जा सकती है। बात पाँचवें दशक के आरम्भ की है जब हिन्दी म प्रगतिशील आन्दोलन जोरो पर था और मयाकोव्स्की का देश—सोवियत रूस हिटलरी हमले के विरुद्ध समाजवाद की रक्षा के लिए प्राणपण से लड रहा था और उस पर सारी दुनिया की आखें टिकी थी। मयाकोव्स्की की कविताओ का हर्बट माशल-कृत अनुवाद, सयाग से, उन्ही दिनो बाजार मे आया था। बच्चन जी ने बडी ईमानदारी मे लिखा है कि वे मयाकोव्स्की से विशेष प्रभावित नही हुए क्योकि उनके लेखे "कवि मे प्रखरता तो थी पर दिव्यता कही नही।' लेकिन प्रतिक्रिया इसके विपरीत भी हुई—खास तौर स उन कवियो मे जिन्ह 'दिव्यता' की तलाश न थी, बल्कि जिनके हृदय मे एक तरह की क्रान्तिकारी भावना थी और जा कविता को नया रूप देने के लिए छटपटा रहे थे। उन प्रगतिशील और प्रयोगधर्मा कवियो का मयाकोव्स्की मे कवि-कम का एक नया आदश दिखायी पडा—शायद एक नया काव्य ससार ही उदघाटित हो गया। सम्भव है, इस अनुभव का बहीखाता कोई कवि कभी लिखे, किन्तु उस अनुभव की झलक उस काल की कविताओ मे आज भी देखी जा सकती है। 'चाद का मुह टेढा है' शीर्षक कविता (१९५३) म मुक्तिबोध का यह कहना कि "आज तो पास्टर ही कविता है", मयाकोव्स्की से परिचय के बिना सम्भव न था। जहा तक मुझे याद है, गिरिजाकुमार माथुर ने भी उन्ही दिनो या शायद कुछ पहले 'हस' म मयाकोव्स्की की एक कविता का अनुवाद प्रकाशित करवाया था। उस कविता की ये दो पक्तियाँ आज भी मुझे याद हैं—"आज हमारे रग की हुई कूची सडकें और कैनवस हुई पाक गलियां चौराहे।" लेकिन मूल प्रेरणा कविता

को पोस्टर बनाने से भी आगे बढकर उस मिज़ाज तक ले जाती है जहा 'जनरुचि के मुह पर एक तमाचा' लगाने का हौसला था और जाहिर है कि दिव्यता दर्शी कवियो को अपने मुह का ख्याल काफी था। वस्तुत उस सक्रांति-काल म मयाकोव्स्की की रचनाओ ने हिन्दी कविता के नव निर्माण म जिस प्रकार उत्प्रेरक का काम किया, उसे आधुनिक हिन्दी कविता के किसी भी इतिहास-कार के लिए अनदेखा करना सम्भव नही है।

इस ऐतिहासिक मोड के अलावा भी रूसी कविता ने आगे चलकर थोडे थोडे अतराल के बाद कम-से-कम दो बार हिन्दी कविता की सृजन प्रक्रिया म एक हद तक योगदान दिया है छठे दशक के अत मे पस्तेरनाक की कविताओ के द्वारा तथा सातवें दशक के अत म येव्तुशेंको और वोज्नेसेंस्की की कविताओ के द्वारा। निस्सन्देह इन प्रभावो की प्रवृत्ति इतनी परोक्ष और सूक्ष्म है कि इनका पता लगाने के लिए अधिक गहराई म उतरने की आवश्यकता है। किन्तु इतना निश्चित है कि छठे दशक के बाद से पश्चिमी दुनिया की कविता अपना आकर्षण खो चुकी है और जिस समय अकविता के मारे हिन्दी कवि बन्द गली में निकलने का प्रयास कर रहे थे उस समय येव्तुशेंको और वोज्नेसेंस्की की कविताओ म मुक्ति का एक मार्ग दिखायी पडा। निस्सन्देह ये कवि हमारी अपनी खोज न थे, ये अँग्रेजी की उसी खिडकी से होकर यहा तक आये थे जिससे एक समय मयाकोव्स्की आये थे, फिर भी पूर्वी हवा के इस झोंके मे ताजगी थी। हिन्दी म इन दोनो कवियो के अनुवाद भी काफी हुए—किसी भी अन्य रूसी कवि से ज्यादा। अनुवाद पेशेवर अनुवादको ने नही, स्वय नये कवियो ने किये। स्वेच्छया और स्वत स्फूर्त। प्रभाव को मापना मुश्किल है फिर भी लगता है कि एक बार फिर रूसी कविता ने हिन्दी काव्य की प्रयोगशाला मे 'उत्प्रेरक' का काम किया।

निस्सन्देह जिन्हे सिर्फ आम खाने से मतलब है पेड गिनने से नहीं, वे समय समय पर पश्चिमी लहर से बहकर आनेवाले रूसी कवियो के छिटपुट अनुवादो मे सन्तोष कर सकते हैं। किन्तु कुछ ऐसी भूखवाले अभागे भी होते हैं जो आम खाने मे पहले उस पेड को देखना चाहते है। उदाहरण के लिए, पस्तेरनाक की कविताओ मे गहरी रुचि लेनेवाला इस बात का पता लगाये बिना नही रह सकता कि उसने शेक्सपियर, गेटे, क्लीस्ट, कीट्स, वर्लेन आदि के अनुवाद क्यो किये और इन अनुवादो ने स्वय पस्तेरनाक के सृजन-कर्म को किस हद तक प्रभावित किया। प्रसगवश यह उल्लेखनीय है कि आधुनिक रूसी कवियो म विदेशी भाषाओ के काव्य के अनुवाद की प्रवृत्ति बहुत व्यापक है और इसके

एक लम्बी परम्परा है। जो इसकी व्याख्या जीविकोपाजन के साधन के रूप मे करके छुट्टी पा लेते है वे सरल समाधान का ही सहारा नही लेते, बल्कि एक राजनीतिक अपप्रचार के भी शिकार है। बहरहाल, आधुनिक रूसी कविताओं के य अनुवाद स्वभावत हममे उनके ऐतिहासिक स दर्भों और कवियो की सृजन-प्रक्रिया सम्बन्धी उन प्रयासो के प्रति जिज्ञासा जगाते हैं जो प्रस्तुत सजनात्मक चुनौतिया के कारण सम्भव हुए। यह जिज्ञासा हम अनिवायत आधुनिक रूसी कविता के आरम्भ की ऐतिहासिक स्थिति की ओर ले जाती है।

जितना रोचक है सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की बीसवी काग्रेस (१९५६) के बाद येव्तुशेंको और वोज्नसेंस्की के द्वारा रूसी कविता को पुनर्जीवित करन का प्रयास उससे कही अधिक रोचक है बीसवी सदी के आरम्भ म ब्लोक और मयाकोव्स्की जस कविया के द्वारा रूसी कविता म नवजीवन के सचार के लिए किया गया सघष। वस्तुत रूसी कविता का स्वण-युग पूश्किन और ल्येरम तोव क साथ १९वीं सदी के पूर्वार्द्ध म ही समाप्त हो गया था। उसके बाद लगभग आधी सदी के लिए रूसी कविता साहित्य क हाशिये पर चली गयी और केन्द्र म आ गया कथा-साहित्य जिसके साथवाह थे विश्वविख्यात कथाकार तुर्गनेव दस्तोएव्स्की, तोल्स्तोय और चेखोव। १९वी सदी क अ त म पैदा होनेवाले अलेक्सान्द्र ब्लोक और उनकी पीढी के अ य कविया का ऐतिहासिक महत्त्व इस बात मे है कि उन्होने कविता को पुन रूसी साहित्य के केन्द्र मे लाने का सजनात्मक प्रयास किया। १९१७ की अक्टूबर क्रान्ति स ठीक पहले के दो दशक विविध काव्य-वादो और आन्दोलना के उदय तथा उनके आपसी टकराव की गहमागहमी से भर हुए है। इस काल म कवियो की दो पीढी सृजन के क्षेत्र म आयी और कोई दो दजन मेधावी कवि इन आन्दोलना म सक्रिय हुए। सम्भवत इस सक्रियता के कारण ही इस युग को रूसी साहित्य के 'रजत-युग' की सज्ञा दी जाती है। रूसी-साहित्य म 'आधुनिकतावाद' की शुरुआत भी इसी युग म हुई, जिसकी अभिव्यक्ति कविता म 'प्रतीकवाद' के नाम स विख्यात है।

किन्तु रूसी प्रतीकवाद व्यापक यूरोपीय आन्दोलन की एक कडी होते हुए भी अन्तत रूसी था। रहस्यवाद और सौन्दयवाद का आग्रह इसमे भी था, किन्तु यथार्थवाद की रूसी परम्परा इतना सुदृढ थी कि उसस दामन बचाना इस प्रतीकवाद के लिए भी सम्भव न था। रूसी प्रतीकवाद की सर्वोत्तम उपलब्धि अलेक्सान्द्र ब्लोक (१८८० १९२१) है जो हमारे यहाँ फ्रासीसी मालार्मे, जमन

रिल्के और अँग्रेजी के यद्म की तुलना म बहुत कम परिचित हैं, किन्तु कविता के क्षेत्र म उनका आत्म सघप सम्भवत हमारे लिए कही अधिक प्रासगिक हो सकता है। आरम्भ म ब्लोक भी अन्य प्रतीकवादियो के समान 'सनातन नारीत्व' के सौन्दय के उपासक थ। यह वही 'सनातन नारीत्व' ह जिसकी महिमा बखानत हुए जोशी व धु (हेमचन्द्र जोशी और इलाचन्द्र जोशी) ने १६१८ की सुधा' मे 'साहित्य-कला और विरह' शीपक लेख लिखा था और जिस पर निराला को 'कला के विरह मे जोशी व धु नामक लेख लिखना पडा था। जोशी बन्धुआ ने अपनी धारणा की पुष्टि के लिए रवीन्द्रनाथ की कविता से य पक्तियाँ भी उदधत की थी 'आमार माझे जे आछे से गो / कोनो विरहिणी नारी। लेकिन रूसी प्रतीकवादी ब्लोक की यह विशेषता है कि उनकी कविताओं की वह सुन्दर स्त्री' क्रमश इतनी व्यापक और सामान्य हो गयी कि उससे स्वय 'रूस की मातृभूमि का आभास होने लगा। ब्लाक शुद्धतम प्रतीकवार हाते हुए भी शुद्ध कला की सीमा म कभी न बँधे और इस प्रकार वे स्वत सम्पूण सौन्दयवाद से कही बडे और कही गहरे थे।

१६०५ की क्रान्ति ने ब्लाक को और ज्यादा झकझोर दिया। कहते हैं कि व पीटसबुग के प्रदशन म शामिल भी हुए थ और उनके हाथ म लाल झण्डा था। जो हो तथ्य यह है कि इस क्रान्ति के बाद १६०६ म उन्होने 'गतिरोध' शीपक एक लेख लिखा जिसकी टक है 'क्या करे? अब क्या करें?'' यह वही प्रश्न है जिसे १६०२ में लेनिन ने रूस के सामने रखा था और जवाब मे बोल्शेविक पार्टी का निर्माण किया था। जहा उनके अनक समकालीन अतीन्द्रिय सौन्दय का स्वप्न देखने मे आत्मतुष्ट थे, ब्लोक अपन आसपास के पतनो मुख बूर्जुवा परिवेश के प्रति गहरी नफरत स भरे थे। इसीलिए सगीत के रूप मे सारे ससार को देखनेवाले इस गायक का कविता म नारा था 'धरती की ओर' और 'मनुष्य के पास', तभी ता अजनबी स्त्री (१६०६) शीपक कविता म जहाँ एक ओर उनके सामन 'रेशम म लिपटी एक रमणी की देह पास धुधली खिडकी म डोलती है'' वही दूसरी आर किसी बच्चे की चीख' और किसी औरत का चीत्कार बीच बीच म सुनायी पडता है। यही यथाथ दष्टि प्रकृति सम्बन्धी कविताओ को भी देश की गहरी वेदना स भर देती है। 'हेमन्ती दिन (१६०६) शीपक कविता म त्रिकाण आकार म उडत सारस हैं तो उनका करुण क्रन्दन भी है, पारदर्शी रुका हुआ दिन है तो उसम कौवे की काँव-काँव भी है, और है नहे-नहे दीन हीन बिखर गाँव भी। अन्त में कवि की उक्ति

ओ रे निधनता के मारे देश हमारे,

क्या है तुममे जिस पर मैं यो न्योछावर हूँ !

कहा अपने देश से एक सौन्दयवादी कवि का यह लगाव और कहा हमारे राष्ट्रवादी कवियो का गगनभेदी देश प्रेम ।

नारी के प्रति ब्लोक की दृष्टि क्या थी इसे 'ग्रीष्म' (१९०७) कविता की इन पक्तियो मे देखा जा सकता है

और मोमवत्ती की लम्बी रोशनी
किताब के उस पन्ने पर पड रही है
जिसम वह प्रोफेसर
मच्छर की तरह मेरे कानो मे भनभना रहा है
कि देश की नारी पीडित है
और इसीलिए उसकी हालत मजदूर की-सी है ।
यह देखो ! यह है उसकी तस्वीर खिचडी बालोवाला प्रोफेसर
बना ठना साफ-सुथरा, अपनी किताब के
पतीस सस्करण निकाल चुका है ! ठहरो
तुम कहत हो मजदूर पीडित है ? लेकिन
वसन्त म मैंने एक जावाज को देखा था
एक मजदूर को देखा था जो सीना ताने लडाई मे कूदकर
मौत को गले लगा लेगा,
अपने दोस्ता के साथ कदम से-कदम मिलाकर ।

× × ×

ठहरो
तुम कहते हो नारी दासी है ?
मैं एक नारी को जानता हूँ ।
अग्निशिखा थी
उसकी चाल मे हवाएँ थी
और आखो मे—विपाद और कामनाओ के दो सागर
वह मार सकती थी
और फिर जिला भी सकती थी
अच्छा, अब तुम
मारकर जिलाने की कोशिश कर देखो !

नही कर सकते ?

लेकिन नारी और मजदूर कर सकते है।

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो" को भारतीय नारी का सर्वोच्च प्रतिमान समझनेवाले देख सकते है कि "चिरतन नारीत्व" के उपासक ब्लोक की 'अग्निशिखा' म कितना तेज है, कितनी करुणा है और है कितनी सजीवनी शक्ति ! क्या हमारे यहा नारी को मजदूर के साथ रखकर देखन का प्रयास कही मिलता है ? इसके अलावा जिनकी धारणा है कि गम्भीर प्रतीकवादी व्यग्य की चाट करन म असमथ थ व ब्लाक के 'प्रोफेसर' का चित्र दखकर अपने भ्रम का निवारण कर सकत है।

ब्लाक के इस रूप से परिचय पाने के बाद आश्चय के लिए अवकाश नही रह जाता कि उन्होंने १९१७ की अक्टूबर क्रान्ति के बाद—'बारह' (१९१८) जैसी अमर कविता लिखी। निस्सदेह बारह' अत्यन्त विवादास्पद कविता है। कविता के अन्त मे सहसा सफेद फूला की माला धारे ईसा मसीह को अवतरित होते देखकर क्रान्ति के समथका का मन प्रश्न से भर उठा था। किन्तु ब्लोक जैसे ईमानदार कलाकार का आतरिक परिवतन इससे भिन्न नही हो सकता था। वे तातावश्म अवसरवादी न थे कि अपना सारा अतीत झाड पाछकर क्रान्तिकारियो का बाना धार भीड म शामिल हो जायें। उनके भावी स्वप्न की भाषा की भी एक सीमा थी, जिससे बढकर या बाहर निकलकर सोचना उनके लिए असम्भव था। वे अक्टूबर के पक्ष म आ गये थे, किन्तु वे अक्टूबर के कवि न थे। कवि वे मूलत क्रान्ति पूव रूस के ही थे और जसाकि लूनाचार्स्की ने कहा है, 'ब्लोक रूसी आभिजात्य के अन्तिम महान कलाकार थे।' पुराने और नये की सक्रमण-बेला म जहाँ बडे-बडे बुद्धिजीवी प्रतिक्रिया की नग्नी मे बह गये, वहा ब्लोक की सजनात्मक दृष्टि ने भविष्य के मूत रूप को पहचानन म चूक नहा की—यह राजनीतिक प्रतिबद्धता का विषय नही, बल्कि कलात्मक निष्ठा का प्रतीक है।

ब्लोक की इस कलात्मक निष्ठा ने कविता की भाषा म अभूतपूव व्यजकता और लयात्मक सगीतात्मकता की सृष्टि की, जिन गुणा के कारण रूसी भाषा मे नय काव्य का सृजन सम्भव हो सका। इसीलिए उनके प्रतीकवाद से असहमति रखनेवाले परवर्ती पीढी के कविया न भी कवि ब्लोक के प्रति हार्दिक श्रद्धा व्यक्त की है। ब्लोक स बारह वष छोटी मरीना त्स्वेतायेवा ने उनके नाम अपनी दस कविताएँ समर्पित की परम्परा भजक मयाकोव्स्की ने ब्लाक के व्यापक प्रभाव को स्वीकार किया और इसी प्रकार उस पीढी के अय कविया न भी अपन-

आपको उनका ऋण स्वीकारी माना। यथार्थनिष्ठ सृजनशीलता अपनी सामाजिक और साहित्यिक सीमाओं का अतिक्रमण कर सकती है, ब्लोक मानो इस मान्यता के जीवन्त दृष्टान्त है।

१९१० तक आते आते रूसी प्रतीकवाद बिखरने लगा। प्रतीकवादियों के धुंधले रहस्यवाद और शैलीगत दुरूहता के विरुद्ध प्रतिक्रिया शुरू हो गयी। मिखाईल कुज़मिन ने १९१० में *'सुंदर सुस्पष्टता के बारे में'* शीर्षक लेख लिखकर यह स्थापित किया कि कविता में वस्तुओं का यथातथ्य वर्णन, शब्दों के अपव्यय से परहेज़ और संक्षिप्तता ही प्रमुख उद्देश्य हैं। प्रतीकवादी ब्रयुसोव *के शिष्य गुमिल्योव ने इन स्थापनाओं के आधार पर १९१२ में कवियों के एक* 'गिल्ड' की स्थापना करके एक नये आंदोलन का सूत्रपात किया, जिसके अनुयायी अपने आपको 'अकेमेईस्ट' कहते थे। इस आंदोलन के प्रमुख कवि थे गुमिल्योव *की पत्नी आन्ना अख्मातोवा और ओसिप मन्देलश्ताम। मन्देलश्ताम की* कविताओं का पहला संग्रह 'पाषाण' (१९१३) अपने नाम से ही 'अकेमेईस्ट' आंदोलन की विशेषताओं को सूचित करता है। मन्देलश्ताम कविता में पत्थर-*जैसे कड़े और सुनिश्चित बिम्बों के द्वारा नव्य क्लासिकी आदर्शों के अनुपालन* का प्रयास कर रहे थे और इस प्रकार वे रूसी भाषा को गोया लैटिन सांचे में ढालना चाहते थे। उसी के आसपास अख्मातोवा की कविताओं के भी दो संग्रह *प्रकाशित हुए 'सन्ध्या'* (१९१२) और 'गुलाबबाड़ी' (१९१२)। मन्देलश्ताम ने उन कविताओं की भाषा की गद्यात्मकता को सराहते हुए लिखा कि अख्मातोवा रूसी गीत में उन्नीसवीं सदी के रूसी उपन्यासों के गद्य की समृद्धि *लाने का श्लाघ्य प्रयत्न कर रही है। स्पष्ट है कि 'अकेमेईस्ट' कवि रूसी कविता* को प्रतीकवादी धुंधलके से बाहर निकालने के लिए आकुल थे, किन्तु यह शिल्पगत विद्रोह प्रतीकवाद का विकल्प प्रस्तुत करने में असमर्थ था। इसीलिए *यह आंदोलन अधिक व्यापक न हो सका। फिर भी इस काव्यांदोलन की* सैद्धान्तिक मान्यताओं के बावजूद आगे चलकर अख्मातोवा और मन्देलश्ताम ने उत्कृष्ट कविताओं की रचना की।

वस्तुतः रूसी कविता में प्रतीकवाद का विकल्प जिस काव्यांदोलन के द्वारा प्रस्तुत हुआ उसके उन्नायक अपने आपको 'फ़्यूचरिस्ट' (भविष्यवादी) कहते थे। इस आंदोलन के प्रमुख नेता थे **बेलीमिर ख्लेब्निकोव** (१८८५-१९२२) और **व्लदीमिर मयाकोव्स्की** (१८९३-१९३०)। *भविष्यवाद नाम से एक आंदोलन* इटली में भी चला था, किन्तु जिस प्रकार रूसी प्रतीकवाद यूरोपीय प्रतीकवाद की एक कड़ी होते हुए भी विशिष्ट था, उसी प्रकार रूसी भविष्यवाद की भी

अपनी विशिष्टता थी। भविष्यवाद प्रतीकवाद को चुनौती देने म समथ इसलिए हो सका कि यह अपनी जीवन दृष्टि म भविष्योमुखी था, जब कि प्रतीकवाद अपने परिवेश से सवथा असन्तुष्ट होते हुए भी अतीत के मोहपाश से पूरी तरह मुक्त होने म असमथ था। १९०५ की क्रान्ति की पराजय के बाद जो निराशा का वातावरण बना उसम कुछ बुद्धिजीवी पस्ती के शिकार हुए तो कुछ ने अराजकतावादी विद्रोह का रास्ता अपनाया। ख्लेबनिकोव और मयाकोव्स्की का रास्ता बहुत कुछ अराजकतावादी था। इसका आभास भविष्यवाद के प्रथम घोषणा पत्र (१९१२) के शीर्षक 'जन-रुचि के मुह पर एक तमाचा' से लगाया जा सकता है। स्पष्टत भविष्यवादी कवि अकेमेईस्ट कवि अकेमेईस्ट कवियो के सवथा विपरीत थे क्योंकि अकेमेईस्ट कवि जहा अतीत के क्लासिकी आदर्शों की ओर लौटने की बात करते थे वहाँ भविष्यवादी अतीत के कवियो को एकदम जहाज से नीचे फेंक देने पर आमादा थे। समकालीन अन्य काव्यान्दोलनो की तुलना म रूसी भविष्यवादी अधिक उग्र आक्रामक उद्दण्ड मूलगामी और मुखर थे। निस्सन्देह यह हुल्लडबाजी एक ऐतिहासिक कुतूहल की वस्तु बनकर रह जाती यदि उन भविष्यवादी कवियो म नये सृजन का गम्भीर सकल्प न होता।

रूसी भविष्यवाद के इन दोनो नेताओ म ख्लेबनिकोव का साहित्यिक व्यक्तित्व विलक्षण है। वे भाषाशास्त्र के गहन विद्वान थे और उन्होंने कविता की भाषा म आमूल क्रान्ति करने का प्रयास किया। अपनी भाषिक क्रान्ति को उन्होंने अर्थातिगामिनी भाषा अथवा अथ मुक्त भाषा के निर्माण का प्रयास कहा है। उन्होंने प्रत्येक शब्द के धातु की खोजकर उसकी ध्वनि के आधार पर अथव्यजना का लक्ष्य बनाया। अपने इस सिद्धान्त को अमली रूप देने के लिए उन्होंने कविताएँ भी लिखी जिनम से अनेक काफी दिलचस्प हैं किन्तु दुर्भाग्य से वे अपनी कविताओ के सग्रह सुरक्षा और प्रकाशन से सवथा उदासीन थे। ख्लेबनिकोव अपने जीवन-काल म फ्रांसीसी कवि रम्बो के समान एक किंवदन्ती बन गये थे। यह फक्कड कवि पूश्किन के समान ही ३८ वष की अल्पायु म मर गया और यह मृत्यु भी उनके जीवन के अनुरूप ही सुदूर देहात के एक अस्पताल म हुई। ख्लेबनिकोव को प्राय कवियो का कवि माना जाता है। समकालीन कवियो म कोई भी प्रतिभाशाली कवि ऐसा नहीं है जो उनसे प्रभावित न हुआ हो।—निकोलाई तिखोनोव बोरीस पस्तरनाक ओसिप मन्देलश्ताम निकोलाई जबोलोत्स्की आदि सभी किसी-न किसी रूप म ख्लेबनिकोव के ऋणी हैं। ख्लेबनिकोव की मत्यु पर अपने शोकोद्गार व्यक्त करते हुए मयाकोव्स्की ने तो यहाँ तक लिखा कि पस्तरनाक सहित अपने समस्त कवि मित्रो की ओर से

मैं कहता हूँ कि हम उन्हें काव्यकला के क्षेत्र मे अपना एक उस्ताद और काव्यात्मक सग्राम मे अपना सबसे शानदार सना-नायक मानत है।" कवियो के अलावा रोमन याकोब्सन और यूरी तिन्यानोव जैसे काव्यशास्त्री भी ख्लेब्निकोव की प्रतिभा के कायल है।

कविता मे जिस नवीकरण की क्रान्ति का सूत्रपात ख्लेब्निकोव ने किया था उसे प्रभावशाली ढग से ठोस व्यावहारिक रूप देने का काय जिस कवि ने किया, वे स्वय मयाकोव्स्की है और सच पूछा जाये तो मयाकाव्स्की अक्टूबर क्रान्ति के ही प्रथम कवि नही वल्कि सच्चे अर्थों म आधुनिक रूसी कविता के भी पहले कवि हैं। विपयवस्तु के साथ ही भाषा, छन्द, लय और काव्यसगीत सभी दष्टियो से मयाकोव्स्की के साथ रूसी कविता सवथा एक नये युग म प्रवेश करती है। पूश्किन के वाद रूसी कविता की भाषा को जितने नये शब्द मयाकोव्स्की ने दिय, शायद ही किसी अन्य कवि ने दिय हो। बलाघात के अनुसार प्रत्यक शब्द का कविता की इकाई के रूप म प्रस्तुत करके मयाकाव्स्की ने सवथा नये लय विन्यास का निर्माण किया। किन्तु हिन्दी की नयी कविता के पाठक इस भ्रम म न पडें कि मयाकाव्स्की मुक्तछन्द के कवि हैं—जैसे कि निराला। वे कोरे राजनीतिक और नारेबाज कवि भी नही है। यह सही है कि उन्होन कविता का पोस्टर और पोस्टर को कविता के स्तर तक ले जाने की कठिन साधना की, किन्तु ओजस्वी वाणी और तीखे व्यग्यो के अतिरिक्त वे प्रेम के ममस्पर्शी गीता के भी समथ सजक हैं।

परम्परा भजक मयाकोव्स्की परम्परा के प्रति क्या दष्टि रखते थ यह उनकी 'जयन्ती' (१९२४) शीषक कविता से स्पष्ट हो सकता है जो पूश्किन की प्रतिमा को सम्बोधित करके लिखी गयी है। उनका विरोध पूश्किन स नही पूश्किनपन्थियो से है

खबरदार, पूश्किन पन्थियो से बचो
मठियाये
कलमघिस्सू
सडे हुए, जूक।

इसी कविता म मयाकोव्स्की अपनी कविता सम्बन्धी आन्तरिक तडप को भी व्यक्त करते हैं और कहत हैं कि "प्रेम और पोस्टरा स/मैं अब आजाद हो चुका हूँ।" और फिर इसके वाद

सिफ
हम जसे लोगो मे

मछली सी लय
कविता के रतीले विस्तार पर तडपती है।
हम तलाश है
एक ठोस
और निहत्थे शब्द की।

एक असाधारण जाखिम (१६२०) शीर्षक कविता मे 'फटेसी' के आवरण मे सूय के साथ जिस सवाद का अकन किया गया है उससे उस क्रान्तिकारी कवि की सजनात्मक ऊर्जा का विस्फोट देखा जा सकता है। सूय धौल जमाकर कवि स कहता है

तुम और मैं
हम दो है, आओ कुछ जवामर्दी का परिचय दे।
उठो कवि आओ
आओ हम गायें
और चिल्लायें
ताकि दुनिया की मुदनी टूटे।
मैं किरणें बरसाऊँगा जो मरी ह
और तुम—
तुम अपनी कविताएँ।'
और थयर-मयर
फूट पडा
कविता और प्रकाश का फव्वारा।

कविता का अन्त इन शब्दा स होता है
तुम्हार भीतर एक
अगारा है।
मेरा और सूरज का
दोना का यह नारा है।

अन्दर का यह अगारा ही मयाकोव्स्की की अक्षय सृजनशीलता का मूल स्रोत है और उनकी कविता को क्रान्ति का पर्याय बना देता है।

आधुनिक रूसी कविता के इस प्रथम उत्थान म कुछ ऐस भी प्रतिभाशाली कवि हुए जो किसी काव्यान्दोलन के साथ पूरी तरह प्रतिबद्ध न थ। उन्होने अपने समकालीन साहित्यिक आन्दालना स आवश्यक प्रेरणा ता ली पर अपना विकास स्वतन्त्र रूप स किया। इन कवियो म मयाकोव्स्की के प्रतिस्पर्धी सेर्गेइ येस्येनिन

(१८९५-१९२५) की चर्चा सबसे पहले की जानी चाहिए। येस्येनिन ने अपने-आपको "रूसी देहात का अंतिम कवि" कहा है। गोर्की के शब्दों में "येस्येनिन इंसान से ज्यादा एक मुखवाद्य या 'आर्गन' है जिसे प्रकृति ने खास तौर से कविता के लिए सिरजा है।" येस्येनिन बहुत-कुछ एक स्वतःस्फूर्त लोककवि के समान रूसी गाँवों के गायक थे—विशेषतः उन गाँवों के जो औद्योगीकरण की प्रक्रिया में धीरे-धीरे मिट रहे थे। मास्को के शहरी वातावरण में आने के बाद आरम्भ में येस्येनिन दूर छूट हुए अपने गाँव की याद के मार्मिक मर्सिये गाते रहे, लेकिन उन दर्दभरे गीतों में गाँवों की सामाजिक जिंदगी की जगह अपनी धरती के प्रति किसान के सहजात लगाव को ही वाणी दी गयी थी। इसलिए उनकी कविता में पेड़, घास, फूल, खेत, मैदान, कुहरा, ओस, हिमानी तूफान, धूप, हवा, पालतू पशुओं आदि को इस ढंग से मानवीय बना दिया गया है गोया वे स्वयं कवि से उसकी भाषा में बात करने में समर्थ हों। किंतु, धीरे-धीरे इस आरम्भिक अबाधता ने येस्येनिन में अतिनाटकीयता की मुद्रा ग्रहण कर ली और शहर के कवि मयाकोव्स्की की होड़ में येस्येनिन गाँवों का प्रवक्ता होने का प्रदर्शन करने लगे। यहाँ तक कि वे औद्योगिक मशीनीकरण के विरुद्ध गाँवों के पिछड़ेपन की हिमायत करने पर उतर आये। किंतु अक्टूबर-क्रान्ति के बाद क्रांति के संदेश को समझकर उन्होंने अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन किया और इस तरह उनकी कविता में भविष्य के प्रति एक नयी आशा का आभास मिलने लगा। किन्तु, उन कविताओं को ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि येस्येनिन इस नये परिवर्तन के साथ अपने बद्धमूल संस्कार का सर्जनात्मक सामंजस्य पूरी तरह न बिठा सके। जैसाकि शहर में आने पर गाँव के अनेक भोले-भाले लोगों के साथ होता है, येस्येनिन भी बोहेमियन तौर-तरीकों के चक्कर में फँस गये और अंत में उन्होंने अपनी जिंदगी से ऊबकर आत्महत्या ही कर ली। मृत्यु के समय कवि की उम्र सिर्फ तीस वर्ष की थी। इन तीस वर्षों की थोड़ी सी उम्र में से पन्द्रह वर्ष कविता के लिए समर्पित थे। मृत्यु से ठीक पहले येस्येनिन एक कविता लिख रहे थे, जिसकी अंतिम दो पंक्तियाँ हैं

> मरना—जीवन में कुछ भी नया नहीं,
> लेकिन जीना भी तो कुछ नया नहीं।

मयाकोव्स्की येस्येनिन की मृत्यु का दुखद समाचार सुनने के बाद इतने विकल हुए कि उन्होंने कविता के माध्यम से उस कविता के प्रतिवाद का संकल्प किया और अंततः एक कविता लिखी, जिसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

मरना
जीवन मे
इतना कठिन नही
जीना लेकिन
कही कठिन है ।

विडम्बना यह है कि स्वय मयाकोव्स्की ने भी पाँच वष बाद इसी तरह अपन ही हाथा अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली । यह है दशय उस कवि का जिसन 'जयन्ती' शीषक कविता म कभी लिखा था

मैं हर किस्म की मृत्यु स
नफरत करता हूँ
मैं हर किस्म के जीवन से प्यार करता हूँ ।

निस्सन्देह यस्येनिन के काव्य मे देहाती रूस के अनेक मनमोहक और दुलभ भावचित्र हैं कही बूढी चक्की खडी हुई है कान हिलाती', कही 'पिसे हुए आटे की गध , कही सडे भूस स गधियाता किसान' और कही 'जीभ साफ करता खूँटे से रगड रगडकर बल । सोवियत रूस' (१९२४) शीषक लम्बे गीत म कवि न यद्यपि अन्त मे अक्टूबर और मई पर अपने तन मन धन को वारने की घोषणा की है, फिर भी अपने ही गाव म वर्षों बाद लौटने पर अजनबीपन की वेदना का चित्र कही ज्यादा गहरा है । इस कविता म भी कवि अपनी कविता की निजता की सुरक्षा के लिए चिन्तित दिखता है

अपनी प्रिय बासुरी छोडकर सबकुछ कर दूगा न्योछावर
इसे किसी का मैं न समर्पित कर पाऊँगा ।

ऐसे सीधे सादे गीता के कारण यस्येनिन को निश्चय ही अपन जमाने मे काफी लाकप्रियता प्राप्त हुई किन्तु सच्चाई यही है कि वे मूलत क्रान्ति पूव के रूस क ही गायक है क्रान्ति के गायक नही । वस्तुत आधुनिक रूसी कविता के प्रमुख स्वरो के बीच वे अपवाद के समान है । आधुनिक रूसी कविता के निर्माण मे उनका शिल्पगत योगदान भी सन्दिग्ध ही मालूम होता है ।

इस क्रम म दूसरा नाम मरीना त्स्वेतायेवा (१८९२ १९४१) का लिया जा सकता है जिन्हाने भी येस्येनिन और मयाकाव्स्की के समान अपने ही हाथा अपने जीवन का अन्त किया । त्स्वेतायेवा भी अपने जमाने के साहित्यिक आन्दोलना से प्राय अलग ही रही, वसे समकालीन कविया के सम्पक म वे बराबर रही । ब्लोक के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी क्योकि उन्होने कविता को 'अलौकिकता' का दर्जा दिया था । वैसे त्स्वेतायेवा के लिए कवियो का रास्ता "पुच्छल तारा

का रास्ता है उष्णता के बजाय उबलता सा, थपथपाने के बजाय चीरता-फाडता-सा—सबकुछ विस्फोटित और ध्वस्त !" इस मामले मे मयाकोव्स्की से उनका अदभुत साम्य दिखायी पडता है। शायद इसीलिए मयाकोव्स्की को वे 'प्रिय शत्रु' कहा करती थी। कविता और कविता की भाषा के प्रति वही विस्फोटक और विध्वसक रुख—किन्तु सयमित और नियन्त्रित ! कविता मे अपने आपको—अपने अन्तरतम को पूरी तरह अनावत करके रख देने का ऐसा साहस अत्यन्त दुलभ है।

अपने बारे मे त्स्वेतायेवा ने सही लिखा है कि ' और मैं हूँ किसी भी सदी म अनखप।" अपने जीवनकाल मे अपने लिए व कही भी स्थान न पा सकी। १९२२ मे देश छोडकर पेरिस चली गयी और वहाँ जिन्दगी के बीस वष घोर दारिद्र्य और विपन्नता मे काटे। वहा न बुर्जुआ पेरिस रास आया और न रूसी प्रवासियो का घृणित परिवेश पसन्द आया। १९३९ म अन्तत स्वदेश लौटी तो थोडे ही दिना मे महायुद्ध छिड गया और १९४१ मे उन्हे मास्को से दूर तातार स्वायत्त गणराज्य के अन्तगत येलागुबा मे सुरक्षा के लिए भेज दिया गया, जहा और अधिक जीना असम्भव हो गया। जिसकी जिन्दगी खोने का एक लम्बा सिलसिला हो उससे कविता मे तिक्त अनुभवो के अलावा और क्या उम्मीद की जा सकती है ? फिर भी आश्चय है कि उनकी कविता मे आत्मदया का आभास तनिक भी नही है। इस मामले म वे अख्मातोवा से नितान्त भिन्न और कही ज्यादा पोख्ता हैं। बीस वर्षों तक प्रवास मे रहने के कारण कविता म 'घर की याद' और देश के लिए 'हुडक' का भाव जरूर उठता है किन्तु वहा भी भावुकता ठोस यथाथ के अकुश मे रहती है।

त्स्वेतायेवा के छोटे गीता मे कुछ बडे ही मनोरम भावचित्र मिलते है जसे 'अगस्त' विषयक कविता मे

अगस्त—तारक पुष्पा का
अगस्त—सितारो का
अगस्त—महीना है
फूला की बौछारा का !

अथवा

तुम्हारा नाम—जसे मेरे हाथ म एक पछी
तुम्हारा नाम—जैसे मेरी जबान पर बफ का टुकडा।

त्स्वेतायेवा की कविता आपातत अपने जमाने की राजनीति और समकालीन घटनाओ से सवथा अछूती और नितान्त वैयक्तिक दिखायी पडती है, किन्तु

वस्तुत वह आधुनिक जीवन की विडम्बना की यथाथ कविता है। त्स्वेतायेवा उन कविया म हैं जिनका मूल्य समय के साथ और बढता जाता है।

समकालीन काव्यान्दोलनो से बहुत-कुछ दूर रहनवाले सबसे महत्त्वपूण कवि ह **बोरीस पस्तेरनाक** (१८९०-१९६०)। उनके विश्वविख्यात उपयास 'डा० जिवागो' ने यदि उनकी आर सारे विश्व का ध्यान आकृष्ट करके उनका उपकार किया तो इसके साथ उनके कवि-रूप का कुछ-कुछ आच्छादित भी कर दिया। यह सही है कि उनके काव्य सृजन का प्रवाह काफी विच्छिन्न रहा है और व अपनी पूववर्ती रचनाओ से निरन्तर असन्तुष्ट होकर उनका तिरस्कार भी करत रह है फिर भी उनकी कायात्मक उपलब्धियाँ अत्यधिक मूल्यवान हैं—अपनी पीढी के कविया म मयाकोव्स्की के बाद सम्भवत सबसे मूल्यवान। मयाकोव्स्की की कविता म जहाँ 'मैं' सबसे मुखर है, पस्तरनाक म 'मैं' का इस हद तक निषेध है कि लगता है जसे उनकी कविताओ का कोई रचनाकार ही नही है। उनके गीता म केन्द्रीय स्थान प्रकृति का है, लेकिन वह प्रकृति चित्रण की 'वस्तु' नही बल्कि स्वय कर्ता ह और इस तरह वे प्रकृति के माध्यम से मनुष्य को ही परिभाषित करत हैं। उदाहरण के लिए 'सिसक्ता बगीचा' कविता म 'मैं और बगीचा' नही है बल्कि 'मै ही बगीचा' है। उनकी कविता म प्रकृति के विषय वही चिर परिचित हैं—जैसे वसन्त पतझड आदि, फिर भी लगता है कि कवि उन्ह पहले पहल देख रहा है—उन्ह देखनवाला सृष्टि म, वह पहला आदमी है। यह सहज विस्मय पस्तरनाक के प्रकृति चित्रा को आश्चयजनक ताजगी प्रदान करता है। रूसी कविता मे ऐसे प्रकृति चित्र दुलभ ही है।

इसके अतिरिक्त कविता की भाषा को भी पस्तेरनाक की देन उल्लेखनीय है। उन्होने कविता मे गद्यात्मक मुहावरो का सन्निवेश करके नये ढग की काव्य भाषा का निर्माण किया। कविता को साहित्य शब्द प्रयोग से मुक्त करने के लिए उन्होंने रोजमर्रा की बातचीत की दिशा मे कविता को मोडा, किन्तु यह प्रयास मयाकोव्स्की के प्रयोग से भिन्न है। 'मुह-अँधेरे ट्रेन' (१९४१) शीषक कविता म इस प्रयोग की बानगी देखी जा सकती है। प्रकृति के चितर कवि ने कविता म स्वभावत अधिक स अधिक नसर्गिक भाषा को लान का प्रयास किया है।

मन्देलश्ताम ने पस्तरनाक की कविता के बारे मे एक बार लिखा था कि पस्तरनाक की कविताओ को पढन का अथ है अपना गला साफ करना, अपनी सास को मजबूत करना और फेफडा को तरो-ताजा करना ऐसी कविताएँ

निश्चय ही क्षयरोग का इलाज हैं।"

तात्पर्य सम्भवत पस्तेरनाक की कविताओ मे निकलनेवाले स्वास्थ्य और ताजगी से है। इस दृष्टि मे भी पस्तेरनाक अपने समकालीन अनेक अनास्थावादी और निराशावादी कवियो से भिन्न हैं। इस कलात्मक सयम के कारण उनकी कविताएँ अपने समय म ही क्लासिकी मर्यादा से मण्डित हो गयी।

इस क्रम मे सबसे कनिष्ठ किन्तु जटिल प्रयोगो के कवि **निकोलाई जबोलोत्स्की** (१९०३-१९५८) हैं जिन्होंने ख्लेब्निकोव के प्रभाव म अधिक-से-अधिक साहसिक प्रयोग किये। उन्होने बहुत कम लिखा है और छपे उससे भी कम है। फिर भी प्रबुद्ध लोगा म उनकी कविता के प्रति सम्भ्रम और सम्मान का भाव है। माध्यम पर उनका अधिकार तथा उनकी मौलिकता असदिग्ध है। पस्तरनाक के समान जबोलोत्स्की की कविता मे भी प्रकृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है, अन्तर यह है कि जबोलोत्स्की मे 'आदिम' के लिए विशेष आकर्षण है—शायद इसके मूल म ख्लेब्निकोव का प्रभाव हो। वे प्राय आदिम वन-सी धरती का जिक्र करते हैं। इसके साथ ही उन्ह कभी तो समीर की सरचना मे कोई हीरा' दिखायी पडता है और कभी 'पतझर का स्थापत्य' आकृष्ट करता है। 'सारस शीर्षक कविता (१९४८) मे ऊपर आसमान म उडते सारसो की ओर सहसा उठे हुए काले थूथन' की सी बन्दूक की नली के दगने का वर्णन उनकी विशिष्ट शैली म इस प्रकार है

एक किरण न वेधा पक्षी का हृदय
लपट उठी, सहसा लपटी, फिर बुझ गयी
और गौरवान्वित महिमा का एक कण
ऊपर स नीचे हम पर आकर गिरा।

उल्लेखनीय है कि कविता मे बन्दूक की नली का जिक्र कही नही है एक जगह काला थूथन' उभरता है और बस।

जबोलोत्स्की की कविता मे एक विशेष प्रकार के दार्शनिक चिन्तन का भी पुट मिलता है। उदाहरण के लिए 'नही खोजता हूँ मैं सामजस्य प्रकृति म" (१९४७) शीर्षक प्रसिद्ध कविता। ब्लाक के समान उनके लिए भी कविता की देवी 'निमम' है जिसन स्वय ही कवि का वरण किया और फिर उसका अतर भी बेध दिया। उनकी कविता सम्बन्धी धारणा निम्नाकित पक्तिया म अच्छी तरह व्यक्त होती है

सूक्ष्म, विलक्षण, गूढ, हास्यमय और अनाखी
कविता जो लगभग कविता सी नही दीखती।

इस प्रकार आधुनिक रूसी कविता के आरम्भ का इतिहास अपनी काव्यगत उपलब्धियों के साथ-साथ कविता सम्बन्धी प्रश्नो से जूझने के गम्भीर प्रयास के कारण हमे आज भी स्फूर्तिप्रद और प्रेरणादायक लगता है। परम्परा और नवीनता का यह द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध सृजन प्रक्रिया को विशेष गति और दिशा प्रदान करता है। इन कवियो मे अपने देश के लिए जैसी आत्मीयता है, अपनी भाषा के साथ जैसा सजनात्मक लगाव है, अपने देश की बहुरगी प्रकृति के प्रति जैसी अन्तर्दृष्टि है और अपने समाज की नियति के लिए जितनी गहरी चिन्ता तथा भविष्योन्मुखी आशा है उससे कोई भी प्रभावित हुए बिना नही रह सकता।

भारतीय भाषा केन्द्र, नामवरसिंह
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली
७ नवम्बर १९७७

अलेक्सान्द्र ब्लोक

अनु० भारतभूषण अग्रवाल

अजनबी स्त्री

शाम के वक्त रेस्तराँओ के ऊपर
गर्म हवा लहराती है खोखल
और नशीले अभिवादन चीख उठते है
दुर्गन्धित वासन्ती साँसो से टकराकर ।

दूर, गलियो की धूल
और बगलो की नीरस कतारो के ऊपर
धुंधली-सी चमकती है एक बेकरी की गाँठदार रोटी[1]
और किसी बच्चे की चीख गूज उठती है।

और हर शाम, सीखचो के फाटको के पार
अपने बोलर हैट टेढे किये हुए
पैदाइशी कलाबाज़
घूमते है अपनी औरतो के साथ नाबदानो के किनारे ।

झील के ऊपर चप्पुओ के कुण्डे खनकते है,
सुनायी देता है किसी औरत का चीत्कार,
और हर तरह की बातो के आदी आसमान मे
चाद की मूढ खोपडी चटकती रह जाती है।

---

१ पुराने रूस में नानबाई की दूकानों पर पहचान के लिए ऐसे ही चिह्न बने होते थे।

और हर शाम मेरे एकमात्र दोस्त का चेहरा
मेरे जाम मे प्रतिबिम्बित होता है
और मेरी तरह वह भी निस्तेज और स्तब्ध हो जाता है
तीखी और विचित्र शराब के असर से ।

और हमारे पास की मेज़ पर
ऊँघते वेटर चिपके रहते हैं
और खरगोश की आँखोवाले पियक्कड
चीख उठते है—'शराब मे ही सत्य है'।

और हर शाम, नियत समय पर
(या कि मैं सिफ सपना देखता हूँ)
रेशम मे लिपटी एक रमणी की देह
धुँधली खिडकी मे डोलती है।

और पियक्कडो के बीच चुपचाप रास्ता बनाती
हमेशा अकेली, बिना किसी सगी के,
कोहरो और खुशबुओ को हवा मे बिखेरती
खिडकी के पास को सीट पर बैठ जाती है।

और पुरानी दन्तकथाओ की गन्ध लिये होता है
मुलायम रेशम
और हैट मे खुसे होते हैं शोक-सूचक पख
और अँगूठियाँ पहने हुए होते है नाजुक हाथ।

और इस विचित्र सामीप्य से बँधकर
मैं काले घूघट पर आँखे टिका देता हूँ

और देखता हूँ एक मन्त्र-बद्ध तट
और एक मन्त्र बद्ध दूरी।

मुझे गूढ रहस्य सौंपे गये हैं
किसी का दिल मुझे सौंप दिया गया है
और तीखी शराब
मेरी आत्मा की रगो मे दौड रही है।

और झुके हुए शुतुरमुग के पख
मेरे दिमाग मे लहरा रहे हैं
और नीली अगाध आँखें
दूर के तट पर खिल रही हैं।

मेरी आत्मा मे एक खजाना छुपा हुआ है
जिसकी चाभी सिफ मेरे पास है!
तुम ठीक कहते हो पियक्कड शैतान!
मैं जानता हूँ, सत्य शराब मे है!

(१९०६)

ग्रीष्म मे

पसीजती गर्मी। मैं लेटा हूँ
बिस्तर मे—बीमार। कोई गरम चीज़
मेरी छाती जला रही है
और हवेली के अहाते मे चारो ओर

भौकते कुत्ते दौड रहे है उजली रात की परछाइयो मे।
और अपने लोगो के बीच—मैं अपना नही हूँ।
सगे-सम्बन्धियो से
मैं कोई सगापन महसूस नही कर पाता।
लोगो से मुझे बेचैनी होती है
उस मच्छड से बस कुछ ही कम जिसे मैंने मार दिया है।
और मोमबत्ती की लम्बी रोशनी
किताब के उस पन्ने पर पड रही है
जिसमे वह खूसट प्रोफेसर
मच्छड की तरह मेरे कानो मे भनभना रहा है
कि इस देश की नारी पीडित है
और इसलिए उसकी हालत मजदूर की सी है।
यह देखो! यह है उसकी तस्वीर खिचडी बालोवाला प्रोफेसर
बना-ठना, साफ सुथरा, अपनी किताब के
पैंतीस सस्करण निकाल चुका है! ठहरो!
तुम कहते हो, मजदूर पीडित है?
लेकिन वसन्त मे मैंने एक जाबाज को देखा था,
एक मजदूर को देखा था, जो सीना ताने लडाई मे कूदकर
मौत को गले लगा लेगा, अपने दोस्तो के साथ कदम से कदम
मिलाकर
और भट्ठिया ठण्डी पड जायेगी
और सारा काम ठप्प हो जायेगा
कारखानो मे। और तुदियल सरमायादार
मजदूरो के आगे झुक जायेगा। ठहरो!
तुम कहते हो कि नारी दासी है?
मैं एक नारी को जानता हूँ।
अग्नि शिखा थी। उसकी चाल म थी हवाएँ।
और आँखो मे—विषाद और कामनाओ के दो सागर।

और वह हलकी-सी उँगलियो मे मूर्त थी,
चचल और कोमल। समझे प्रोफेसर,
चार तत्त्वो का मेल
बस एक उसी मे था। वह मार सकती थी—
और फिर जिला भी सकती थी। अच्छा, अब तुम
मारकर जिलाने की कोशिश कर देखो! नही कर सकते?
लेकिन नारी और मजदूर कर सकते है।

(१६०७)

स्वीकृति

ओ सीमाहीन अन्तहीन वसन्त—
ओ अनन्त और असीम सपने!
मैं तुम्हे जानता हूँ, ओ मेरे जीवन! मैं तुम्हे स्वीकार करता हूँ
और कवच खनखनाकर तुम्हारा स्वागत करता हूँ।

मैं तुम्हे स्वीकार करता हूँ, ओ असफलते!
सफलते, मैं तुम्हारा अभिवादन करता हूँ
रुदन के दुश्चक्र मे
हास के रहस्य लोक मे कुछ भी लज्जाजनक नही होता!

मैं स्वीकार करता हूँ निद्राहीन तर्कों को
खिडकियो के अँधेरे परदो मे छिपी हुई सुबह को,
भरने दो वसन्त को जलन और खुमारी
मेरी धू-धू करती आँखो मे!

मैं तुम्हे स्वीकार करता हूँ ओ ऊजड गाँवो ।
और तुम्हे भी, ओ धरती के शहरो के कुँओ ।
ओ आसमान के उजले विस्तार,
ओ दास मजदूरो की यन्त्रणा ।

मैं तुम्हे देहरी पर भेंटता हूँ
आधी के लहराते घुँघराले बालो के साथ
अपने ठण्डे और भिचे हुए ओठो पर
देवता का अनबूझा नाम लेकर

इस अनिष्टकर मिलन मे
मैं अपना कवच कभी नही उतारूँगा
न तुम अपने कन्धे कभी उघाडोगे
लेकिन हम पर छाया रहेगा एक नशीला सपना ।

मैं देख रहा हूँ, नाप रहा हूँ बैर को,
घृणा से, गाली से, प्यार से
यन्त्रणाओ की सौगन्ध, मत्यु की सौगन्ध—मैं जानता हूँ—
फिर भी मैं तुम्हे स्वीकार करता हूँ ।

(१९०७)

हेमन्ती दिन

कटे खत मे चले जा रहे हैं हम धीरे
तुम हो मेरे साथ, प्रिये ओ भोली-भाली

और हृदय मेरा यो हलका हो आया है
मानो मैं हूँ किसी विजन-से गिरजाघर मे।

कितना निमल, निस्वन है यह हेमन्ती दिन
सिर्फ सुनायी पडता है उस कौए का रव
जो भर्राये स्वर मे टेर रहा औरो को,
या कि दूर पर किसी एक बुढिया की खाँसी।

मँडलाता है धुआँ झुका अपनी बखार पर
हम दोनो चुपचाप भीत से पीठ लगाये
बैठे-बैठे देख रहे है अपलक नभ मे
दूर उडे जाते सारस वे पख पसारे।

त्रिभुजाकार, उड रहे हैं वे आसमान मे
उनका नेता क्रन्दन करता है विषाद से
क्यो, आखिर किसलिए टेरता है वह ऐसे ?
क्या रहस्य है इस हेमन्ती विकल चीख का ?

गिनना दूर, दृष्टि मे भरना भी दूभर है
नन्हे नन्हे दीन हीन बिखरे गाँवो को
और दूर बाँगर मे कोई आग जल रही
छायी है इस कजलाते हेमन्ती दिन पर।

ओ रे निधनता के मारे देश हमारे !
क्या है तुझमे जिसपर मैं यो न्योछावर हूँ ?
ओ मेरी सगिनी ! निरीह प्रिया ओ मेरी !
किस दुख मे यो फूट फूटकर रोती है तू ?

(१९०७)

वह

वह पाले से आयी थी
लाल-सुर्ख,
कमरे को
हवा और इत्र की गन्ध से भरती हुई,
टुनटुनाती आवाज़
और चह-चहाहट से
गम्भीर बातों का निरादर करती हुई।

आते ही उसने एक कला-पत्रिका की मोटी जिल्द
फर्श पर डाल दी
और अचानक
मेरा लम्बा-चौड़ा कमरा
छोटा लगने लगा।

ये बातें कुछ झुंझलानेवाली
और बेहूदा-सी थीं।
फिर भी उसने चाहा
कि मैं उसे 'मैकबेथ' पढ़कर सुनाऊँ।

ज्योंही मैंने धरती के बुलबुलों का वह प्रसंग पढ़ना शुरू किया
जिसे मैं उत्तेजित हुए बिना नहीं सुना पाता,
मैंने देखा कि वह भी उत्तेजित हो गयी
और बड़े गौर से खिड़की के बाहर देखने लगी।

हुआ यह कि एक बड़ी सी चितकबरी बिल्ली
छत के किनारे दम साधे चल रही थी
कबूतरों की चूमती हुई जोड़ी की घात में।

मैं विगड उठा, खासकर इसलिए
कि हम नही, कबूतर एक दूसरे को चूम रहे थे,
और क्योकि पाओलो और फ्रासिस्का[1] का युग बीत चुका है।

(१६०८)

रूस

उन सुनहरे दिनो की ही तरह आज फिर
तीन मैली ब्रीच-पट्टिया घोडो की पीठो को रगड रही है
और रगीन पहिये
दलदल मे फँस गये हैं।

ओ रूस
गरीबी के मारे रूस
तुम्हारी बदरग झोपडिया
तुम्हारे गूजते गीत
मुझे प्यार के पहले आसुओ-जैसे लगते है।

नही, मैं तुम पर तरस नही खाऊँगा
और अपना क्रूस होशियारी से ढोऊँगा
तुम अपना जगली सौन्दर्य
चाहे जिस जादूगर को दे दो!

---

१ इतावला महाकवि दान्ते के महाकाव्य में वर्णित प्रेमी-युगल। फ्रासिस्का अपने देवर पाओलो से प्रेम करता थी जिसके कारण उसके पति ने उसे मार डाला था।

वह तुम्हे चाहे जितना बहकाये, चाहे जितना छले—
तुम मिटोगे नही, न गायब होओगे,
बस चिन्ता तुम्हारे सुन्दर मुखडे पर
बादल बनकर छायी रहेगी

पर उससे क्या ? एक चिन्ता और सही
धारा मे एक आंसू और सही
तुम जैसे थे वैसे ही रहोगे—
वैसे ही वन, वैसे ही खेत
और वैसा ही बडा कढाईदार स्काफ
भौहो तक बँधा हुआ

और लो, असम्भव भी सम्भव होता है
एक लम्बा रास्ता आसान बन जाता है
जब दूर उस रास्ते पर अचानक
स्काफ के नीचे से एक नजर झांक उठती है
और कोचवान का अनमना गीत
जेल-जैसी उदासी से भर जाता है !

(१६०८)

कभी न लौटेंगे वे सपने

मुझे मेज से जब निहार उठता था बारम्बार
जडा फ्रेम मे सादे से तेरा मुखडा छविमान ।
शौय, कला गौरव की बाते मैं जाता था भूल,
इस उदास धरती की हलचल मुझे न रहती याद ।

पर आयी वह घडी और तू चली गयी घर छोड,
मैंने भी तेरी प्यारी मुद्रिका फेंक दी दूर,
किसी और के हाथों में सौंपा तूने निज भाग्य,
मैंने भी तव भुला दिया तेरा मुखडा छविमान।

बीत चले मेरे दिन उन्मद आवर्त्तन में लीन,
राग रंग ने मेरा जीवन कर डाला बर्बाद।
तभी याद आयी तेरी वह छवि वेदी के पास,
तुझको, अपने गत यौवन को, दी मैंने आवाज़।

मैंने तुझे पुकारा, आयी किन्तु न तू फिर लौट,
तू न हुई विचलित, मैंने थे बहुत बहाये अश्रु।
नीली बरसाती धारण कर तू उदास चुपचाप,
चली गयी थी छोड सदा को घर उस गीली रात।

क्या जानूँ पा गया कहाँ पर आश्रय तेरा गर्व,
ओ सुकुमार प्रिया! उस नीली बरसाती का स्वप्न!
जिसे पहनकर लुप्त हुई थी तू उस गीली रात,
मैं देखा करता हूँ अब भी आती है जब नींद।

कभी न लौटेंगे वे सपने गौरवमय, सुकुमार,
बीत गया यौवन भी मेरा, सब कुछ हुआ समाप्त।
और मेज़ से हटा दिये है मैंने अपने हाथ,
जडा फ्रेम मे सादे से तेरा मुखडा छविमान।

(१९०८)

मास्को की सुबह

कितना अच्छा है या उठना अलस्सवेरे,
और ज्योति के चरण-चिह्न धूल मे निरखना,
प्राणप्रिये ! कितना सुखकर है स्मरण तुम्हारा,
और जान लेना कि सदा तुम सग हो मेरे।

तुम्हे प्यार करता हूँ मैं ओ मेरी रानी !
अलबेली स्वच्छन्द भरी मेरी तरुणाई !
और प्रेमलिन की यह झीनी कोमलता भी
आज सवेरे तेरी ही छवि-सी लगती है।

(१६०६)

वे क्षण

ऐसे भी क्षण आते रहते हैं जीवन मे
घोर आँधियाँ भी जब हमको डिगा न पाती।
कोई जब इन कन्धो पर बाँहे रख देता
और झाँकने लगता इन आँखो मे कोई

तब सहसा गायब होती जग की चिन्ताएँ
किसी गहन गह्वर मे जाकर डूब समाती,
और अतल से उठ सतरगे इन्द्रधनुष-सा
एक मौन मुझ पर छा जाता धीरे धीरे

और उतरने लगता तब फिर व्याप्त मौन मे
कोमल मीठा एक तरुण स्वर हलके हलके
इस वीणा की भाँति कसे मन के तारो पर
थपकी देकर जिसे सुलाया हो जीवन ने।

(१६१२)

कला की देवी से

है विनाश के सन्देशो से,
पूरित तेरी ताने गोपन,
है अपावनीकरण सुखो का,
गुह्यादेशो का उल्लघन।

बार-बार मैं कह सकता हूँ
तेरा है अदम्य आकर्षण,
तेरे रूपजाल मे फँसकर
भ्रष्ट हो गये पूज्य देवगण।

जब खिल्लियाँ उडाती है तू
आस्था की, तब कुछ धुँधला सा
तेरे सिर पर जग उठता
बैंगनी प्रभा-सा, वृत्त उजाला।

शुभ या अशुभ ? अजनबी तू है
जग के लिए पहेली दुष्कर,

कुछ को सरस्वती है तू पर
मुझको है यातना भयकर।

क्या जानू, क्यो उस विहान मे
जब निष्प्राण हुआ मेरा तन,
मै मर नही सका, क्यो मैंने
पाया तेरी छवि मे जीवन।

मैंने चाहा वैर, किन्तु क्यो
तूने दिये मुझे उपहार
पुष्पित उपवन, ताराकित नभ
अपनी छवि के शब्द अपार ?

तेरे आलिगन थे ध्रुवी
निशाओ से भी अधिक भयकर
बजारो की रीति सरीखे
क्षणिक, सुरा से भी मादकतर !

जग के पावन नियम तोडने
मे था मुझे मिला सुख घातक,
जिसने मुझको नाग विजय-सा
परमानन्द दिया था मादक।

(१६१२)

झलक

भूली हुई झलक दिख जाती
पल - भर को लेता पहचान,
वायलिनो से छनकर आता
मन्द निविड स्वर का मधु-गान—

जिसमे दिया प्रिया ने मुझको
प्रथम प्रणय का वह प्रतिदान,
अब भी उसे चीन्ह लेता हूँ
जब चलते हिम के तूफान।

जब अतीत सब चिह्न मिटाकर
बीत चुका है, कभी कभार
औरो के आवेश जगाते
सुख का वह भूला ससार।

(१९१३)

मुक्ति

चाहता हूँ जीना मदमस्त
पार्थिवो को कर देना अमर
दीन-हीनो को दे व्यक्तित्व
कल्पना को करना साकार।

रुद्ध हो दुस्वप्नो के भार।
भले घुट जाये मेरे प्राण—
कदाचित् कोई सुखी युवा
एक दिन मेरे लिए कहे

'क्षमा कर दे उसका अवसाद
न थी वह उसकी प्रेरक शक्ति
सत्य-शिव-सुन्दर का वह पुंज
मुक्ति की जय-सा था साक्षात।'

(१९१४)

मोर्चे की ओर

वर्षा-बोझिल नभ था पेत्रोग्राद[1] शहर का
एक फौज-गाडी मोर्चे पर जाने को थी।
पल्टन पर पल्टन, सगीनो पर सगीने
अन्तहीन-सी डिब्बो मे भरती जाती थी।

बिछुडन का दुख और प्यार की दुश्चिन्ताएँ
बल की, यौवन की आशाएँ-आकाक्षाएँ,
उमग रही थी गाडी के हजार प्राणो मे।
सान्ध्य-प्रभा से धूमिल घन रक्तिम लगते थे।

---

१ प्रथम विश्व-युद्ध छिडने के बाद सेण्ट पीटर्सबुर्ग को दिया गया नाम। अब इसका नाम लेनिनग्राद है।

कुछ सीटों पर बैठे वारयाग[1] गाते थे,
येरमाक[2] गाते थे कुछ बेसुरे गले से
'हुर्रा-हुर्रा' कहकर हँसी-ठिठोली करते,
हाथों से चुपचाप बनाते चिह्न क्रूस का।

सहसा एक झरी पत्ती उड गयी हवा मे,
डोल उठी टिमटिम करती वह लालटेन भी,
श्याम घनो के नीचे मस्त बिगुलवाले ने
ट्रेन छूटने का अन्तिम सकेत बजाया।

सैनिक गौरव-भरी बिगुल की सिसकारी ने
चिन्ताकुल कर दिया सभी के मन प्राणो को,
पहियो की घर-घर ने, भर्रायी सीटी ने
दबा दिया उस अन्तहीन 'हुर्रा' के रव को।

लुप्त हुए आखिरी बफर भी अँधियारे मे,
और छा गया सन्नाटा दूसरी ओर तक,
फिर भी भीगे खेतो मे 'हुर्रा' ध्वनि आयी
और सुना गर्जना-भरा स्वर 'यही समय है।'

नही, बरसती दूरी मे भी उस सन्ध्या को
हमे न अनुभव हुआ शोक का या कि दया का।
वह था सुदढ स्पष्ट निष्ठामय सयत साहस
उसे जरूरत न थी हमारे खेद-शोक की।

शोक हमारा सुन पड गया था लपटो मे,
तोपो की धू-धू मे, टापो की टप टप मे,

---

1 पुराने लोकप्रिय रूसी फौजी गीत।
2 पुराने लोकप्रिय रूसी फौजी गीत।

गलिशिया के खूनी रणक्षेत्रों से उठते
एक विषाक्त कोहरे से ढँक गयी उदासी।

(१९१४)

अभियोग से पहले

दृष्टि झुका ली है तुमने क्यों असमंजस में ?
पहले की ही तरह ज़रा देखो तो मुझको !
दीन-हीन तुम देखो तो कैसी लगती हो,
इस दिन के तीखे औ' अकलुष उजियाले में।

मैं भी तो अब नहीं रहा वह पहले-जैसा—
दुर्लभ और पवित्र, क्रुद्ध, कोरा अभिमानी,
विनय दृष्टि से मैं हताश-सा देख रहा हूँ
सरल और रसहीन राह धरती पर अपनी।

मुझे नहीं अधिकार, न मुझमें शक्ति रही वह,
मैं कर सकूँ तुम्हारी कोई आज भर्त्सना,
कि तुम बिताती रही दुखद, आडम्बर के दिन—
ऐसा भाग्य अनेक नारियों ने भोगा है।

किन्तु ज्ञान है मुझे तुम्हारे जीवन की गति,
औरों से कुछ अधिक ज्ञान है मुझे तुम्हारा,
न्यायाधीशों से भी अधिक बता सकता हूँ,
कैसे आ पहुँची हो तुम अब इस कगार पर।

कैसा मरण-ज्वार था वह जो हमे एक दिन
ठेल-ठेलकर ले आया था इस कगार पर,
हमने चाहा था कि तोडकर अपने बन्धन
साथ-साथ हम उडें, गिरे भी साथ-साथ ही।

तुम हरदम बस यही स्वप्न देखा करती थी—
जलना हो तो साथ-साथ हम जलें अन्त तक,
और परस्पर भुजबन्धन मे जब दम टूटे,
तो हमको वरदान मिले आनन्द-लोक का।

किन्तु करे भी क्या कोई यदि इस सपने ने
हमे छला, सपने तो छलते ही रहते हैं,
यदि अन्धे जीवन ने हम पर निदय होकर
लगातार ये भीषण कोडे बरसाये हैं।

कमव्यस्त जीवन क्यो चिता करे हमारी,
और स्वप्न भी स्वप्न सिद्ध हो गया अन्त मे,
लेकिन देखो सच बतलाना, तुमको मुझसे
मिल न सका सुख कम से-कम क्या एक बार भी ?

मेरी उँगली मे लिपटा यह बाल सुनहला
क्या उस परिचित दीप-शिखा का चिह्न नही है ?
ओ सकोचहीन मदमाती चपला मेरी,
अरी अविस्मरणीया ! मुझे क्षमा कर देना।

(१९१५)

अन्तत

गौर स्कन्ध, काली आँखो से
यह कैसा सम्मोहन वाले ।
चाहे मुझे लुभाओ तुम यो,
किन्तु लगाव न मुझको कोई ।

मुझे ज्ञात है तुम वहुतो को
लुब्ध करोगी इस क्रीडा से,
और कामिनी रूप अत मे
छोड, बनोगी वत्सल माता ।

लेकिन भाग्य-चक्र के घेरे
हानि-लाभ अनगिनती सहकर,
जनमोगी अरुणाभ फेन से
तुम फिर से नितान्त ऐसी ही ।

(१९१५)

बोरीस पस्तेरनाक

अनु० श्रीकान्त वर्मा

सिसकता हुआ बगीचा

भयानक ! पहले वह एक बूंद गिरने देती है फिर कान लगा
सुनती है क्या इस ससार मे अकेली है वह—
खिडकी पर डाल को मरोडती है लेस की तरह—
या कोई और भी यह दृश्य देख रहा है ?

फूली हुई मिट्टी के बोध से
गद्गद हो रही है तृप्त पृथ्वी
सुनायी पड रहा है, बहुत दूर, गोया अगस्त मे
मध्यरात खेतो मे किस तरह जवान हो रही है।

एक भी शब्द नही। कोई पहरुआ नही।
नाप-तौल लेने के बाद कि बिल्कुल वियावान है
दोवारा शुरू करती है वह—लुढकती है
छप्परो पर, नालियो मे, कहा नही !

मैं उसे अपने ओठो पर दोहराता फिर कान लगा सुनता हूँ
क्या इस ससार मे अकेला हूँ मैं—
आसू अब गिरा कि तब गिरा—
या कोई और भी यह दृश्य देख रहा है ?

मगर सबकुछ खामोश है। पत्ता तक नही हिलता।
घुप्प अँधेरा है, सिफ अन्तराल मे गटागट पीने की आवाज है
चप्पलो की फटाफट है, घुली-मिली
आँसू पीने की आहट है, आह है।

(१९११)

मुँह-अँधेरे ट्रेन

मैं मास्को के नजदीक रहता था उन सर्दियो मे
लेकिन जब ठण्ड बढती, आधी आती या बर्फ पडती
मैं, जरूरत पडने पर, हमेशा
काम से शहर जाता था।

मै मुह अँधेरे
घर से निकल पडा
और जगल के अँधेरे मे
अपने कदमो की चरमर बिखरा रहा था चारो ओर।

वजर मे नम्रा दूब के फूल उठ खडे हुए
मेरा अभिवादन करने को चौराहे पर
जनवरी के ठण्डे सूराख से निकलकर
उभर रहे थे ये गरबीले नक्षत्र।

बहुधा पिछवाडे
कभी डाकगाडी कभी ट्रेन नम्बर चालीस

कोशिश करती तेज़ी से मुझसे आगे निकलने की
मैं भागता छह बजकर बीस की गाडी पकडने को ।

अचानक रोशनी की सूझ-भरी सलवटे
सकेतो की तरह एक व्यूह बनाकर इक्ट्ठी हुईं
अपनी भव्यता लिये सर्चलाइट
सडक के मुहाने पर पडी ।

ट्रेन की उत्तप्त निकटता मे मैंने स्वय को
हवाले कर दिया
अपनी जन्मजात दुबलता के, जो मुझे
मेरी मा के दूध से मिला था ।

गुपचुप पहचाना
वर्षो के युद्ध और उथल-पुथल से
गुजरे
रूस के अद्वितीय चेहरे को

इसके पहले कि मैं विभोर हो जाऊँ मैंने खुद को
सम्हाला और चारो ओर श्रद्धा भरी नज़रो से देखा ।
यहाँ वहाँ स्त्रियाँ थी, बस्ती के लोग थे,
छात्र थे और मिस्त्री थे ।

उनके चेहरो पर गरीबी से जन्मी
गुलामी की छाप न थी कोई भी ।
और वे खबरो और असुविधाओ को
शहशाहो की तरह बरदाश्त कर रहे थे ।

जिस तरह लोग घोडा गाडियो मे बैठते हैं,
उस तरह अलग-अलग दिशाओ, मुद्राओ मे
बैठे हुए बच्चे और किशोर
पढने मे मगन थे।

मास्को ने हमारा स्वागत किया अँधेरे मे
जो जल्द ही चाँदी मे बदल गया
और दोहरी रोशनी को छोड हम
बाहर आये मेट्रो स्टेशन के।

लडके रेलिंगो से चिपके हुए थे
और उनके नजदीक से गुज़रते हुए लगा
छाल-झरबेरी साबुन और शहद की रोटियो की
महक उड रही है।

(१६४१)

एक भयानक कथा

आसपास सबकुछ बदल जायेगा
राजधानी होगी फिर से बरकरार,
नही भूल पाऊँगा मैं डरकर,
जाग उठे बच्चो की पुकार।

नही भूल पायेंगे हम उनके
चेहरो पर लिखा हुआ भय।

दुश्मन को चुकानी होगी
सौ-गुनी कीमत निश्चय।

रक्खेंगे याद हम दुश्मन की मार
रक्खेंगे याद यह समय
जब दुश्मन ने की ऐसी मनमानी
जैसे बैथलहम मे हेरोद ने।

आयेगा नया युग, आयेगा बेहतर समय
नही रह जायेंगे गवाह
मगर भुला नही पायेगा कोई
इन बच्चो की कराह।

(१९४१)

-

दोबारा वसन्त

ट्रेन जा चुकी है। स्याह है तट।
कैसे ढूढूगा मैं अपना रास्ता अँधेरे मे ?
आसपास सबकुछ कितना अस्पष्ट है
हालाकि गया सिर्फ एक दिन, एक रात गुज़री है।
पटरियो पर लोहा पिटने की आवाज बुझ चुकी है।
अचानक यह कैसा तिलिस्म,
यह कैसा ऊल-जलूल, यह कैसी स्त्रियो की गोष्ठी ?
शायद यह करिश्मा है शैतान का ?

कहा सुने थे मैंने बातचीत के ये टुकडे
पिछले साल
ओह, शायद यह वह झरना है
जो झुरमुट से आज रात बाहर निकल आया है।
निश्चय ही यह वह घरेलू तालाब है
जो बर्फ को ढकेलकर पहले की तरह ऊपर उठ आया है।
एक और करिश्मा है।
दोबारा वसन्त है।

वसन्त है यह वसन्त है।
टोना है यह उसका जादू है
वह देखो नम्रा के पेड के पीछे वह उसका जैकेट है,
रूमाल है, पीठ है और कमर है।
चट्टान के कगार पर खडी हिम-कन्या है
वही है जिसे लेकर गुफा के भीतर से
उस मतवाले गपोडिये की बडबड बहती चली आ रही है।

वही है जिसके सामने, हर रोडे-पत्थर को बाढ मे लपेटती
लपकती हुई नदियाँ खो जाती है उस जल-भरे बादल मे
जो किसी चट्टान से फिसलकर
धूप मे नहाते जल-प्रपात पर गिरता है।
दाँत किटकिटाती हुई ठण्ड मे
बर्फीली नदी है वह बह रही है कगार पर
तालाब पर और वहाँ से और किसी पात्र मे
उद्दाम जल का स्वर है यह, जीवन की बेहिसाब अभिव्यक्ति है।

(१९४१)

तह मे

मैं तह तक पहुँचना चाहता हूँ
हर चीज मे
काम मे, अपने अन्वेषणो मे
हृदय की उथल-पुथल मे।

मैं धँसना चाहता हूँ
गुज़रे हुए दिनो के कारण मे, तत्व मे
जड मे
तह मे।

मैं नियति और घटनाओ के सूत्रो को
पकडकर
जीना, सोचना, अनुभव करना, प्रेम मे जकडना
खोज करना चाहता हूँ।

काश थोडा भी
मेरे बूते का होता ऐसा कर पाना
मैं बतलाता मनोवेगो के अपने विशेष गुणो को
मात्र आठ पक्तियो के छन्द में।

उसका मनमाना दुराचार,
पलायन और पीछा,
अचानक घटनाओ,
कन्धो और हाथो के स्पर्शों के विषय मे।

मैं खोज निकालता उसके कानूनो को
बुनियादो को

दोहराता उसके अनगिनत नामो के
प्रथमाक्षरो को ।

कविता को बिछाता बगीचे की तरह
हरेक पत्ते की फडफडाहट पर बज उठते
पीले फूलोवाले पेड
वहाँ पक्तिबद्ध उगते ।

कविता मे शामिल करता मैं
सुगन्ध पोदीने की, छायाएँ घने पेडो की,
नरकट और चरागाह,
बिजली की कौध ।

ज़माना हुए शोपाँ ने इसी तरह
अपने सगीत मे
झाडियो, पार्को, श्मशानो
मडैयो को शामिल किया था ।

जीत का सुख और
जीत की पीडा
सधे हुए धनुष की
खिची हुई प्रत्यचा ।

(१६५६)

रात

रात जल्दी-जल्दी पैर बढा रही है
ओझल हो रही है,
चादर तान सोयी पडी दुनिया के ऊपर से
एक पायलट बादलो को चीरता गुजर रहा है।

वह कोहरे मे गायब हो गया है
प्रवाह मे खो गया है
जैसे किसी कपडे पर टाँका,
या धोबी का चिह्न।

नीचे रात-भर जागे मयखाने है
अजनबी नगर है,
बैरक है, भट्टियाँ है,
स्टेशन है, ट्रेनें हैं।

विमान के डैनो की छाया
बादल पर पडती है
नक्षत्र झुण्ड बना-बना
घूम रहे है

और आकाशगगा एक भयानक
मोड ले
किन्ही और अजनबी
लोको की तरफ निकल गयी है।

अनन्त अन्तरिक्ष मे
महाद्वीप जगमगा रहे हैं

जाग रहे हैं व्यापारी
भट्टियो, तहखानो मे।

शुक्र या मगल
पेरिस की छतो की आड से झाँक रहे हैं
कि पोस्टरो मे
किस नये प्रहसन की सूचना है ?

कही किसी अद्भुत सुदूर ससार मे
खपरैलोवाली छन के तले
एक पुरानी दुछत्ती मे
कोई सो नही पा रहा है।

तारे गिन रहा है
गोया आसमान
उसकी रात की
रोजाना चिन्ता का विषय हो।

सोओ मत, सोओ मत, काम करो
रुको नही, काम करो,
सोओ मत, नीद से जूझो
पायलट की तरह, तारे की तरह।

सोओ मत, मत सोओ, कलाकार
हावी मत होने दो नीद को,
तुम अनन्तता की जमानत हो,
काल के बन्दी हो।

(१६५६)

मरीना त्स्वेतायेवा

अनु० राजीव सक्सेना

कही दूर

कही दूर, बहुत दूर से कवि शुरू करता है अपनी कहानी,
और उसे ले जाती है कही दूर, बहुत दूर उसकी अपनी ही
किस्सा-बयानी।

नक्षत्रो और स्मृति-चिह्नो के पास से गुजरता किन्ही
बोधकथाओ के
झटको मे झूलता हाँ और ना के बीच वह किसी घण्टाघर से
छलाग लगाते सन्न से आ गिरता है नीचे
क्योकि पुच्छलतारो का रास्ता ही
कवियो का रास्ता है। कारणत्व के छिन्न-भिन्न तार—
वही तो उसके बन्धन हैं। तुम अपना सिर टेढाकर ऊपर
उठाये हुए
डूब जाओगे हताशा मे। क्योकि कवि को ग्रहण लगने का समय
बँधा नही है किसी पचाग की अटल व्यवस्था से।

वह है कि कभी ताश के पत्ते कर देता है गडमड,
कभी छलता है नाप-तौल और हिसाब-किताब दोनो को,
वह है जो शकाएँ उठाता है कक्षा मे अपनी जगह से,
और कभी उडा देता है काट के दशन की धज्जियाँ।

वह है जो लेटा हुआ है बास्तील के पत्थर के कफन मे
जैसे पेड अपने सौन्दय मे।
वह है जिसके चरणचिह्नो ने सदा ठण्डा कर दिया है
उस ट्रेन को जो हर आदमी से
छूट जाती है
—क्योकि पुच्छलतारो का रास्ता ही—
कवियो का रास्ता है—उष्णता के बजाय उबलता-सा,
थपथपाने के बजाय चीरता-फाडता-सा—सब कुछ विस्फोटित
और ध्वस—
तुम्हारा जीवन पथ, घोडे के बालो-सा और उलझा हुआ,
बँधा नही किसी पचाग की अटल व्यवस्था से।

(१९१६-१२)

हम

हम—हाँ तुम और मैं—गये नही कभी साथ-साथ किसी
यात्रा पर,
हमारी जेबो मे छेद बन गये है सारे समुन्दर,
पाँच रुपल्ली के एक घिसे-मैले नोट को लेकर,
सागर-पार यात्राएँ है अपने बस के बाहर!

हमारे दारिद्र य की बासी रोटी! हमे पुन सहना है
ग्रीष्म, जैसे दरके हुए पपडी पडे अधर
समुन्दर हमारे लिए बन गया है एक छिछला स्थान
और हमारा ग्रीष्म—अन्य लोग बैठे है हडपकर!

वे लोग है इतने फूले कि अभी फट जायेंगे, चरबी है जिनकी
रौनक,
वे केवल मक्खन ही नही खाते, भेजा भी खाते हैं
हमारा और तुम्हारा, कविताओ मे, गीतो मे, रागो मे
वे नरभक्षी जो अपने को पेरिसी फैशन के लिबासो मे छिपाते है !

वे मनोरजन करते हैं हमारे बल पर प्रवेश-शुल्क एक फ्रॅंक है
केवल।
आह, वे दानव, जो अपना मुंह धोते है
एक अमर गीत लेकर, मानो है शौच जल,
कहर गिरे तुम पर, ये सब मेरे लिए होते है

लज्जा के विषय कि मैं तुमसे हाथ मिलाती हूँ जब मेरी हथेली
खुजलाती है,
कि मेरी पांच उँगलियाँ—पांच इन्द्रियो की प्रतिनिधि बनकर—
किन्ही मधुर भावनाओ की स्मृतियो पर झुंझलाती—
कसकर जड देती हैं तुम्हारे चेहरे पर अपने हस्ताक्षर !

(१६३४)

घर की याद

घर की याद ! एक लम्बे अर्से तक
यातनाएँ सहूँगी !
मुझे कोई कम चिन्ता नही है कि
कहाँ, बिल्कुल अकेली रहूँगी।

जीवित रहने के लिए कौन-सी ठोकरें खाना है
घिसटते हुए बाजार से लौटते थैला थामे लादे हुए थकान
उस घर को जिसको मैं खुद नही जानती कि मेरा है,
एक अस्पताल या फौजी बैरक के समान।

कम चिन्ता नही कि किन चेहरो के बीच
गिरफ्तार सिंह की तरह गुर्राना है मुझको
या किस मानवीय परिवेश से अनिवायत
उखाडा जाना है मुझको—

धकेली जाना है स्वय अपने अन्दर, अपनी भावनाओ की
विशिष्टता के अ दर,
कमचात्का के ऐसे भालू की तरह जिसके पाँव तले नही बर्फ की
चादर,
और कहा-कहाँ मुझको निभाना है दूसरे लोगो का साथ
(आशा व्यथ नही है)
और कहाँ पर मुझको विनम्रता दिखानी है, मेरे लिए सब कुछ है
बराबर!

और न ही मुझे फाँस पायेगी मेरी मातृभाषा की
दूधिया मिठास
मुझे चिन्ता नही कि किस भाषा के कारण
समझ नही पायेगा कोई राही मेरी बकवास!

(क्या फर्क पडता है जब पाठक पचा जाते है
लाखो टन कागज, और ग्वाले तमाम गपशप)
वह है बीसवी सदी का इनसान
और मैं हूँ किसी भी सदी मे अनखप!

उस ठूंठ की तरह
जो खडा रह गया है गली वेजान,
सब लोग, सब चीजें एक समान हैं,
मगर शायद सबसे अधिक समान—

और सबसे अधिक अपना है—मेरा अतीत।
सभी चिह्न, सभी पहचानें और सभी तारीखों की शह—
मुझसे दूर हो गयी हैं मानो छूट गयी हैं हाथ से
मेरी आत्मा पुनजन्म लेती है किसी और जगह।

मेरी सुरक्षा करने मे असमर्थ रहा है मेरा वतन इतना
कि अत्यन्त तीखी नज़रोंवाला जासूस अगर आयेगा
और छानेगा मेरी आत्मा एक छोर से दूसरे छोर तक
तब भी मेरा कोई जन्मजात चिह्न खोज नही पायेगा!

हर घर मेरे लिए है अजनबी, हर मन्दिर है वीराना,
और अब किसी भी बात से कोई फर्क नही पडता, सब कुछ है
बराबर
फिर भी जब मैं अपनी राह चलती हूँ, मैं प्रवेश कर जाती हूँ
किसी झाडी मे, विशेषकर किसी एश वृक्ष के अन्दर

(१९३४)

ओ मेरी वफादार मेज़

ओ मेरी वफादार मेज़ !
शुक्रिया कि तुमने मेरा साथ दिया
सारे रास्ते भर, मेरी रक्षा की
ओ क्षतचिह्न जैसी मेरी पहचान, तुम्हारा शुक्रिया !

ओ मेरा लेखन ढोनेवाले खच्चर !
शुक्रिया कि कभी तुम्हारे पाँव नही झुके
बोझा ढोने मे, और निरन्तर बढते चले जाने मे
सपनो का ढेर लिये—शुक्रिया कि तुम नही थके !

ओ कठोरतम दर्पण !
शुक्रिया कि तुमने सदा निमम बन
(दुनियावी लोभो की देहरी पर)
लौकिक आनन्दा के पार रखा अपनापन,

दूर रखा ओछी और कमीनी, घिसी पिटी चीज़ो से।
बलूत की लकडी से निर्मित ओ मेरी अनुरक्ति,
घणा के हिंस्र सिंह और आक्रामक हाथी के विरुद्ध
सबके विरुद्ध, हा सबके विरुद्ध, तुम हो मेरी प्रतिशक्ति।

तुम मेरे मच हो जो है मृतवत जीवित,
धन्यवाद कि तुम होती हो जाती हो विकसित
मेरे साथ-साथ और मेरे कारनामो के साथ साथ
जो मेज़ से जुडे हैं और तुमसे होते जाते है विशालतर और विस्तृत

इतने सुविस्तृत, इतने दूर दूर तक फैले,
इतने कि मेरा मुँह फला रह जाता है खुलकर,

और मेज़ का किनारा पकड, मैं चीख उठती हूँ,
कि मुझको चपेट मे ले लिया है तुमने ज्वार की तरह उछलकर।

सुबह होते ही बाँध लेते हो तुम मुझे कसकर,
शुक्रिया कि तुम मेरे पीछे उमडती चलती हो,
सारे रास्ते घेरकर तुम मुझे पकड लेती हो
जैसे कोई शाह किसी शरण आयी युवती को।

वापस कुर्सी मे लुढक जाती हू। शुक्रिया कि तुम मेरी
देखभाल करती हो इतनी कि मुझको क्षणभगुर
लोभो से उबार लेती हो जैसे मुक्त कर लेता है
सम्मोहन मे बँधे किसी निद्राचारी को कोई जादूगर।

युद्धो के मेरे क्षतचिन्हो को, ओ मेरी मेज,
तुमने कर दिया है स्तम्भो के रूप मे व्यवस्थित
मशालो की तरह किरमिजी रग जिन्दा है
वह मेरी करनी का स्तम्भ है सुनिश्चित।

ओ सन्यासी के निवास स्तम्भ, मेरे अधरा के ताले,
तुम सिहासन हो, मेरे विस्तार हो व्यापक,
तुम मेरे लिए जलता हुआ स्तम्भ हो जैसे
यहूदी जन सागर का स्तम्भ था प्रेरणादायक।

इसलिए तुम चिरजीवी हो।
मैं अपने मस्तक, कुहनी और घुटने के बल
परीक्षा ले चुकी हूँ तुम्हारी और एक आरी की तरह
तुम मेरे सीने को चीरती हो मेज की धार से केवल।

(१९३४)

वे कविताएँ

वे कविताएँ लिखी गयी थी जब मैं होश सँभाल रही थी,
मुझे नही था बोध कि मैं हूँ कवि-जैसा कोई महान जन,
वे कविताएँ फूट पडी थी ज्यो फव्वारे की बौछारे,
जैसे राकेटो से सहसा झर पडते है प्रबल अग्नि-कण।

उतर पडी वे नन्ही नन्ही नटखट परियो सी उपवन मे,
जहाँ उनीदी धूप-गन्ध फैली थी, मादकता छायी थी,
यौवन और मत्यु के सन्दर्भो की थी मेरी कविताएँ
—अपठित कविताएँ—वे मैंने प्राणो-सी प्यारी पायी थी।

वे किताब की दूकानो मे धूल लदी बिखरी फैली थी,
(जहाँ न उनका खरीदार था कल, न आज भी खरीदार है)
लेकिन वे मेरी कविताएँ मूल्यवान मदिराओ-जैसी
उचित समय पर पायेगी निज गौरव, यह आस्था अपार है!

(१९१३)

मेरे पास से गुजरते हुए

मित्रो, तुम सब मेरे पास से गुजरते हुए जिस जादुई जगत की
ओर जा रहे हो
वह मेरा नही है, हालांकि वह बडा ही है मन मोहक,
काश तुम जानते कि कितनी भारी आग, कितना विस्तृत जीवन
व्यर्थ ही बरबाद होता रहा आज तक,

व्यर्थ ही गया इतना वीरतापूर्ण उत्साह
मात्र एक छाया को छूने और आहट को पाने मे
और अब मेरा दिल राख हुआ जाता है उस बारूद द्वारा
जिसको मैंने व्यर्थ वरबाद किया सुरगे लगाने मे।

आह, रात को चीरती हुई आगे बढती ट्रेने,
जिन्होने छीन लिया था नीद का क्षण
हालाकि मुझे विश्वास है कि तब भी
तुम नही पहचान पाते—अगर तुम्हे विदित भी होता वह लक्षण—
कि मेरे बोलने का ढग इतना निर्भीक क्यो था
और मेरे सिगरेट की स्थायी पफो मे जो घुमडती रही—
उसमे कितनी उदास और खतरनाक हसरत थी
जो मेरे सुकेशी मस्तक मे सदा उमडती रही।

(१९१३)

सोचो तो कितने लोग

सोचो तो कितने लोग समा गये हैं इस गर्त्त मे
जो सामने खडा है विराट मुँह बाये,
मैं भी गायब हो जाऊँगी इस धरती से,
वह दिन जब आये,

तब वह सब जो गाता रहा, लडता रहा, दमकता रहा,
और आगे बढता रहा—शान्त हो जायेगा,
मेरी आखो का मणियो-सा हरा रग, कोमल रग,
और स्वर्णिम केशराशि—सबकुछ खो जायेगा।

किन्तु रोज़ रोटी कमाती और हर रोज़ भूलती
जिन्दगी चलती ही जायेगी अनथक,
मुझे छोड यहाँ सबकुछ होगा, मानो इस गगन के नीचे
कभी नही था मेरा अस्तित्व तक।

नही रहूँगी मैं कि जो तुनकमिजाज हर मुद्रा मे, जैसे बच्चे हु
करते
और उसी तरह शैतान भी है कमोवेश,
जिसे वे घडियाँ प्यारी हैं जव अँगीठी मे लकडियाँ इतनी ज
जाती
कि रहनेवाली होती है राख शेप।

वह जायेंगे बिगुल, और घुडसवारो के दल जगल मे
और गाव के गिरजाघरो की घण्टियो की पुकार,
—और मैं स्वय, इतनी हवाई और इतनी वास्तविक
इस धरती पर जो कितनी है उदार।

आप सव लोगो से—जो मेरे लिए अजनवी है और वधु भी—
मैं—कि जिसको किसी बात के मोल का नही है कोई भी बोध—
मागने बैठी हूँ विश्वास भाव
और करने बैठी हूँ प्यार देने का अनुरोध,

दिन और रात तथा मौखिक और लिखित, दोनो ही रूपो मे
और हाँ तथा नहीं के सत्य के लिए,
मेरी भावनाओ के लिए, जो अक्सर बडी उदास होती है,
और मेरे मात्र वीस-वर्षीय कृत्य के लिए,

अपराधो के लिए क्षमा प्रार्थी वनने की
नियति अनिवार्य होने के लिए,

मेरी अपार चाहो के लिए और गव के
अतिरेक की अनुकृति ढोने के लिए,

तेजी से घूमते घटना-चक्र के वेग के लिए,
सत्य के लिए, कार्यवाही के लिए
सुनिए ! मुझे भी प्यार करना न भूले
मेरे मरने की नियति की गवाही के लिए !

(१९१३)

तुम्हारा नाम

तुम्हारा नाम—जैसे मेरे हाथ मे एक पछी,
तुम्हारा नाम—जैसे मेरी जबान पर बर्फ का टुकडा।
मेरे ओठो की गति का एकमात्र कारण,
तुम्हारा नाम—पाँच अक्षर।
भागती गेंद जैसे पकड ली हो,
जैसे मुँह मे चाँदी की घण्टी।

एक शान्त तालाब मे उछाल फेंका हो जैसे पत्थर
सिसक उठता है जब लोग पुकारते हैं तुम्हारा नाम लेकर।
रात की टापो की हलकी-सी प्रतिध्वनि मे
तुम्हारा खनखनाता नाम गूज उठता है जोर से ।
और मेरी कनपटी पर तुम्हारा नाम लिख दिया जाता है,
घोडा दबाये जाने की प्रतिध्वनित ठक से।

तुम्हारा नाम—आह, इतना जुल्म न करो !
तुम्हारा नाम है चुम्बन आँखो पर
खामोश बरौनियो की कोमल कठोर शीतलता पर ।
तुम्हारा नाम है बर्फ का चुम्बन ।
एक झरने के नीले बर्फीले पानी की एक घूँट,
तुम्हारे नाम के बाद—मेरी मदहोशी कितनी गहरी हो जाती है ।

(१६१६)

गोधूलि मे

आरम्भ हुई गोधूलि मे एक विश्व-व्यापी यात्रा यायावर,
पेड परिक्रमा करने लगे अँधेरे से लिपटी धरती की,
अगूरो के गुच्छे झूमने लगे सुनहरी शराब मे डूबकर, उतराकर,
सितारे घूमने लगे एक घर से दूसरे घर,
हो उठी—विपरीत धार—गतिशील सरिताएँ चचल,
और मैं विकल हूँ तुम्हारे सीने पर सिर रखने और
सोने के लिए इस पल !

(१६१६-२१)

काश मैं तुम्हारे साथ रहती

काश मैं तुम्हारे साथ रहती
एक छोटे से कस्बे मे

जहाँ होती गोधूलि मे डूबी शामे
और गूँजती शाश्वत घण्टियो की टन-टन ।
और एक छोटी-सी गँवई सराय मे
ऊँची आवाज़ से गूँजते घण्टे
किसी पुरानी घडी के, समय की बूदो की तरह टप टप ।
और कभी किसी शाम किसी दुमजले पर
बज उठती बाँसुरी
और वादक स्वय बैठा होता खिडकी मे
और खिडकी के छज्जे से झाँकते बडे-बडे ट्यूलिप
और शायद तब भी तुम मेरे प्यार मे बँधे नही होते

कमरे के बीचोबीच एक बडी अँगीठी होती,
जिसके हर पत्थर पर एक डिज़ाइन बना होता
एक गुलाब, एक दिल, एक जहाज़ ।
और एकमात्र खिडकी से झाँकती
बर्फ, बर्फ, बर्फ ।

तुम उसी मुद्रा मे लेटे हुए होते जिसे मैं प्यार करती हूँ अलसाये,
खोये-खोये और लापरवाह,
और बस कभी-कभी गूँज जाती तीखी
माचिस की रगड ।
सिगरेट जलती और छोटी होती जाती ।
और काफी देर बाद उसके सिरे पर काँपती
राख—छोटा-सा मटमैला स्तम्भ ।
तुम इतने आलसी हो कि उसको झाडते भी नही—
और सारी सिगरेट उछालकर फेंक देते आग मे ।

(१६१६-२१)

अगस्त

अगस्त—तारक पुष्पों का
अगस्त—सितारों का
अगस्त—अंगूरों के गुच्छों का
और भूरी भूरी
एशबरी का—अगस्त !

तुम अपने उस ठाठदार
उपकारी शाही सेब से
खेलते हो बच्चों की तरह, ओ अगस्त,
मानो तुम अपनी हथेली से सहलाते हो
वह हृदय जिसका ऐसा शाही नाम है
अगस्त ! ओ हृदय !

देर से पाये चुम्बनों का महीना,
देर से फूले गुलाबों और देर से तड़पी बिजलियों का।
फूलों सी झरी बौछारें—
अगस्त—महीना है
फूलों की बौछारों का !

(१६१६-२१)

मत करना प्यार

एक अमीर आदमी लट्टू हुआ एक गरीब लड़की पर,
एक विद्वान मूर्ख लड़की पर,

एक गुलाबी कपोलवाला एक जर्द चेहरेवालो पर,
एक सहृदय किसी दुष्टा पर
और एक रुपया तावे के पैसे पर।

ओ सौदागर, कहा है तुम्हारी धन दौलत ?
"सौ-सौ छेदोवाली तौलियो की टोकरी मे!"

ओ दम्भी, कहाँ है तुम्हारा विवेक ?
"लडकी के तकिये के नीचे!"

ओ खूबसूरत मर्द, तुम्हारे गाल गुलाबी क्यो रहे नही ?
"वे एक काली रात पर निछावर होकर मुरझा गये!"

और कहाँ है जञ्जीर मे लटका हुआ चाँदी का क्रास ?
"लडकी ने दबा रखा है अपनी सैंडिलो के नीचे!"

ओ अमीर मत करना प्यार एक गरीब लडकी को,
ओ विद्वान मत करना प्यार एक मूख लडकी को
ओ गुलाबी कपोलवाले मर्द मत करना प्यार एक ज़र्द लडकी को,
ओ सहृदय मत करना प्यार एक दुष्टा लडकी को
और ओ चादी के रुपये—ताँबे के पैसे को!

(१६१६-२१)

अनायास

जैसे दाहिना हाथ है बायें से जुडा
तुम्हारी आत्मा है मेरी आत्मा के पास,

हम आनन्द की ऊष्मा विश्राममग्न हैं इस स्थल पर,
बायें और दायें पखो का जैसे सहवास,

किन्तु उठता है बवण्डर और दरार फैलने लगती है,
दाहिने पक्ष से बायें की ओर अनायास ।

(१९१९-२१)

अर्थहीन दिन

मेरा दिन होता है बडा बेहूदा और बदचलन,
क्योकि पेट के लिए मागता हूँ भीख एक भिखारी के सामने
फैलाकर दामन,
और दान देता हूँ एक अमीर को उसकी गरीबी पर तरस खाकर।

मैं गुज़ारता हूँ सुई की आँख से सूर्य-किरण,
सोचता हूँ कुजी एक चोर को जिसका उद्देश्य है धन-हरण,
और चढाता हूँ कलई अपनी गरीबी पर एक रौनक की खातिर।

भिखारी मुझे रोटी देने से इनकार कर देगा फौरन,
अमीर आदमी स्वीकार नही करेगा मुझसे कोई धन,
और गुजरेगी नही सूई की आँख से सूर्य-किरण आखिर।

कुंजियो के बिना ही पैठ जाता है चोर,
बिखेरती है हृदयहीन लड़की आँसुओ के फव्वारे चारो ओर,
इस श्रीहीन और अर्थहीन दिन पर ।

(१९१९-२१)

पखुरियोवाले मेहमान

कविताएँ उगती हैं तारो की भाति और गुलाबो की भाँति,
ऐसे सौन्दय की भाँति—जो परिवार मे अवाछित तत्व,
और सारी पुष्पमालाओ तथा देवत्व आरोपणो का
केवल एक उत्तर है ये सब कहाँ से आकर बने हैं मेरा स्वत्व ?

सोये पड़े होते हैं हम गहरी नीद मे और यहा पत्थर की पट्टियो
को चीरकर,
प्रकट होते हैं चार पखुरियोवाले मेहमान,
ओ दुनिया, कुछ समझो तो, कि कवि ही खोज पाता है सपनो मे,
फूलो का नुसखा और तारो का विधान !

(१९१९-२१)

आल्या के प्रति

मैं कह नही सकती कि तुम कहाँ हो और मैं कहाँ,
हमारे और तुम्हारे गीत और चिन्ताएँ एक हैं यहाँ,

हम दोनो मित्र हैं आपस मे
हम दोनो अनाथ हैं आपस मे

दोनो एक साथ कितना सुख पाते हैं,
बेघर, बेनींद और बेहद अकेले
दो चिड़ियाँ   भोर उठते हम गाते हैं,
दो मुसाफिर   दुनिया से भरण-पोषण पाते हैं

मै पूछूंगी

उसने मेरी आंखो मे कल ही तो झांका था,
आज वह मुझसे नजरे बचाता है,
कल ही तो वह यहाँ बैठा था भोर चिड़ियो के चहकने तक,
अब हर पक्षी गिद्ध बना जाता है।

मैं हूँ मूर्ख और तुम बहुत चतुर हो,
तुम अभी जीवित हो और मैं हूँ बेदम,
आह, औरत का हरदम यह शिकवा कि
"मैंने क्या बिगाडा है तुम्हारा ओ प्रियतम !"

उसके लिए आसू बस पानी है और लहू कोरा जल,
अपने को उसने सराबोर कर लिया है लहू और जल मे,
प्यार कोई मा नही, बस सौतेली माँ है
उससे न आशा है दया की, न ही ममता की किसी पल मे।

हमारे प्रेमियो को ले जाते हैं जहाज कही दूर,
और फिर बर्फ ढँकी रुपहली सडको के पार
कराहे फैल जाती है धरती के कोने-कोने मे
"मैंने क्या बिगाडा है तुम्हारा ऐ यार !"

कल ही तुम लेटे हुए थे मेरे पावो के पास,
और विशाल चीन देश से कर रहे थे तुम मेरी तुलना,
तुम्हारे दोनो हाथ यकायक अलग हो गये,
और मेरी जिन्दगी गिर पडी जैसे खोटे सिक्के का गिरना।

खडी हूँ नवजात शिशु के हत्यारे की भाति मैं अदालत मे
ठुकरायी हुई और अपना भरोसा खोये हुए गुमसुम,
किन्तु मैं नरक मे भी पूछूँगी प्रिय तुमसे,
"मैंने क्या बिगाडा था तुम्हारा ओ निमम !"

मैं पूछूँगी कुर्सी से, पूछूँगी बिछौने से,
"मेरा क्या गुनाह कि सताया जा रहा है, सज़ा दी जा रही है,"
वे जवाब देंगी, "उसके पास अब कोई चुम्बन नही बचा है
तुम्हारे लिए,
अब अन्य किसी नारी के चूमे जाने की बारी आ रही है।"

तुमने सिखा दिया है मुझको अग्नि के गर्भ मे भी जीवित रहना,
और फिर बर्फीले मैदान मे फेंक दिया जाना भी
कर लिया मैंने गवारा,
तुमने मेरे साथ क्या सलूक किया है ओ प्रियतम,
तुम्हारा क्या बिगाडा था मैंने, क्या बिगाडा था तुम्हारा ?

मैंने हर गहराई नापी—क्या तुम कर सकते हो इससे इनकार ।
औरत प्रेमिका कहाँ रहती है जब पा लेती है आँखो का उजास,
दूर, और दूर हटता जा रहा है प्यार,
और मौत—एक बगीचे जैसी फिज़ाँ—आती जा रही है पास ।

सेब पक गया है—पेड हिलाने से होगा क्या लाभ,
उचित समय पर वह गिर जायेगा अपने ही आप
मुझे क्षमा कर देना प्रिय, मुझे क्षमा कर देना,
मैंने अगर किया हो तुम्हारे प्रति अन्याय या कोई पाप ।

(१६१६-२१)

व्लदीमिर मयाकोव्स्की

अनु० श्रीकान्त वर्मा

तुम

एक नग्नलीला से एक और नग्नलीला मे धँसते हुए
एक उम्दा गुसलखाने के बादशाह !
तुम्हारी यह मजाल कि सेंट ज्यार्जी[1] के तमगे के
उम्मीदवारो के बारे मे पढ रहे हो अखबार मे ?

सख्यातीत मूर्खो, तुम जो केवल
ठूँस रहे हो, क्या तुमने सोचा है
कि शायद अभी-अभी पेत्रोव[2] ने, जो पल्टन मे लेफ्टिनेंट है,
बम के धडाके मे अपनी दोनो टागें खो दी है।

फज करो यदि वह वध के लिए लाया जाय
और उसकी निगाह तुम पर पडे, उसके शरीर से
रक्त के फव्वारे फूटते हो
और तुम, तुम्हारे मुँह से कवाब का तेल चू रहा हो
वेहया गीत गाते हुए सेवेरयानिन !

तुम-जैसो के लिए अपनी जान दूँ
लौडियाबाजो और पेटुओ !

---

१ रूसी आर्थोडाक्स चर्च के सन्त जाज

२ रूसी कुलनाम

बेहतर है शराबखानो मे रण्डियो को
पाइन एप्पल जूस पिलाया करूँ ।

(१६१५)

एक असाधारण जोखिम

ग्रीष्म मे ब्लदीमिर मयाकोव्स्की के साथ यह घटा
(मास्को से कुछ दूर यरोस्लावी रेल-पथ पर अकूलोव
पहाडी पर पुश्किनो स्थित रूमयान्तसेव ग्रीष्मनिवास)

सूर्यास्त सकडो सूर्यो की तरह धधक रहा था,
ग्रीष्म जुलाई की ओर लुढक रहा था,
भयानक थी गर्मी
मारक थी गर्मी—
ऐसे मे जो घटा मेरे ग्रीष्मनिवास मे बयान है ।
अकूलोव पहाडी अपनी कूबड
उठाये हुए खडी थी,
नीचे तलहटी मे गाँव था,
खपरैले जैसे आवरण मे लिपटी पडी थी ।
हाँ, तो गाँव से दूर
एक गड्ढा था,
गडढे मे रोज़-रोज़
धीमे-धीमे मगर रोज़
सूरज सोने की कोशिश मे

लुढकता-पुढकता था, इतना मैं जानता हूँ ।
और फिर
दूसरे दिन
सूरज फिर उगता और
चमकता
और मुझे अन्तत पागल कर देता था
रोज वही फट-पडता समय ।
और एक दिन इस सबसे थककर और ऊबकर
मैं तमतमाये सूरज के सामने ही चीख पडा
"अबे ओ लोफर उतर
तेरे पास बादलो मे
एक गद्देदार जगह है और मैं हूँ कि
साल-दर-साल यहाँ झख मार रहा हूँ
और पोस्टरो मे सुर्खी पैदा कर रहा हूँ ।"
"सुन," मैं चिल्लाया, "सुन ओ सोने की खोपडी,
सुस्त पडे रहने के बजाय
क्यो न जरा देर के लिए चाय को रुक जा ।"
यह मैंने क्या किया !
अब मेरी खैर नही ।
दूर दूर किरणे फैलाता,
दैत्याकार डग भरता
सूरज
मेरी पुकार पर चला आ रहा है ।
ढोंग करता हुआ कि डरा नही हूँ मै
मैं पीछे हटता हूँ ।
वह आ रहा है,
वह पास आ चुका है,

मैं उसकी श्वेत-सुख आखें देखता हूँ।
खिडकियो और दरवाजो के रास्ते
मुस्तण्ड सूरज भीतर आया
और दम लेकर
बोला धीमी आवाज मे
"सृष्टि के बाद
पहली बार मैं अपनी दिनचर्या बदल रहा हूँ।
कवि, जाओ
लाओ कुछ मुरब्बा और चाय।
वरना बुलाया क्यो ?"
और हालांकि मैं गर्मी मे तर-ब-तर हो रहा था
लगभग रो रहा था,
समोवार लेकर हाजिर हुआ।
"तशरीफ रखो
कामरेड आफताब।"
मगर चिल्लाने का कोई असर नही हुआ।
बुरा हो मेरी बदमगजी का।
हारा हुआ मैं
कुर्सी के हत्थे पर बैठा था
डरा-डरा जाने क्या हो !
मगर सूरज से
एक विचित्र प्रकाश फूट रहा था—
वह उतना परेशान नही नजर आता था
और मैं अपने सकट को भूल,
मेरा डर जाता रहा था,
बैठा हुआ था
आफताब से बाते करता हुआ।

मैंने इसकी
और उसकी
वहशी रोस्ता[1] की
बातें की।
"ठीक! ठीक!" उसने कहा
"बालक! हिम्मत मत हारो।
परवा मत करो
तुम्हारा ख्याल है वहाँ ऊपर
दिन-भर चमकना आसान है?
जरा कोशिश कर देखो!
मगर क्योंकि यह काम मेरे सुपुर्द है
मेरा नारा है
करो या मरो।"
इस तरह हम अँधेरा होने तक, साफ कहूँ तो
कल रात तक बातें करते रहे।
हुह!
वाकई अँधेरा!
झिझक मिट चुकी थी
मजे मे दोनो का वक्त कटा।
और थोडी ही देर बाद मैंने
याराना उसके कन्धे थपथपाये
और उसने भी धौल जमाकर कहा,
"तुम और मैं
हम दो हैं, आओ कुछ और जवांमर्दी का परिचय दें।
उठो कवि, आओ।
आओ हम गायें

१ रूसी समाचार एजेंसी जो बाद में 'तास' के नाम से पुनर्गठित की गयी।

और चिल्लायें
ताकि दुनिया की मुर्दनी टूट
मैं किरणे बरसाऊँगा जो मेरी हैं
और तुम
तुम अपनी कविताएँ।"
ढहा दी निराशा की दीवार
और रात के कैदखाने को
हम दोनो की दोनाली मार ने
और थथर-मथर
फूट पडा
कविता और प्रकाश का फव्वारा।
सूरज थक चलता है
और सोने को प्रस्थान करता है
और तब पूरी ताकत से फूट पडता हू मैं
और एक बार दिन फिर निकलता है।
हमेशा चमकने
और हर जगह गमकने को
जिन्दगी के आखिरी कतरे तक
दमकने को
तुम्हारे भीतर एक
अगारा है
मेरा और सूरज
दोनो का यह नारा है।

(१९२०)

जयन्ती

अलेक्सान्द्र सेर्गेइविच
मुझे अपना परिचय देने की इजाजत दो—
मयाकोव्स्की !

हाथ बढाओ ।
मेरे सीने पर रखो ।
सुनो,
अब यह धडकता नही, कराहता है,
डरपोक, यह छोटा सा शेर का पिल्ला
मुझे चिन्तित करता है ।
मैं नही जानता था
मेरे इस
बेहया, निश्चिन्त दिमाग मे
इतनी, हजारो
चिन्ताएँ हैं ।
मैं तुम्हे घसीट रहा हूँ ।
तुम चकित हो, क्यो ?
पकड बहुत सख्त है ?
दर्द हो रहा है ? माफ करना दोस्त ।
मुझे और तुम्हे
अनन्त तक जीना है ।
घण्टे दो घण्टे
हो ही गये यदि बरबाद
तो क्या हुआ ?
आओ, हम गपशप करते हुए
निकल चले
जैसे हम बहता हुआ पानी हो ।

आज़ाद,
बिल्कुल आज़ाद
जैसे वसन्त मे।
देखो,
आसमान मे
चाँदनी
इतनी जवान है
कि
उसका यो अकेले गुजरना
खतरे से खाली नही।
प्रेम
और पोस्टरो से
मैं अब आजाद हो चुका हूँ।
पजेदार ईर्प्या के रीछ की
चमडी उधेडी जा चुकी है
खाल सूख रही है।
साफ है
कि पृथ्वी
ढलुवाँ हो चुकी है,
बैठ जाओ,
बस, अपनी चूतड टिका दो
और फिसल चलो।
नही,
मैं उदासी के अँधेरे मे तुमको भटकाना नही चाहता,
नही
मुझे किसी से कुछ
नही कहना है।

सिर्फ
हम-जैसे लोगो मे
मछली सी लय
कविता के रेतीले विस्तार पर तडपती है।
सोचने मे ख़तरा है
स्वप्न बेमानी है,
हमे वही-वही काम करना है
उन्ही-उन्ही रास्तो से
गुज़रना है।
मगर कभी ऐसा भी होता है
कि ज़िन्दगी
करवट बदलती है
और इस टुच्ची दुनिया से गुजरते हुए
दुनिया कुछ और समझ आती है।
कविता पर हमने
सगीनो से बार-बार
हमला किया है।
हमे तलाश है
एक ठोस
और निहत्थे शब्द की।
मगर यह हरामज़ादी कविता
अजब चीज़ है
पीछा नही छोडती—
और कोई इस बारे मे कुछ भी नही कर सकता।
उदाहरण के लिए
इसी को लो,
इसे पढें या मिमियाये
नारगी मूछोवाली

इस नीली चीज़ का—
याइबिल के नेबुचडनसर की तरह—
क्या कहते हैं इसे—
'कोपसाप'[1]
ग्लास बढाओ।
मैं जानता हूँ
इसका भी तरीका
हालांकि वह पुराना पड चुका है।
गम को
शराब मे बहा दो
मगर याद रखो
लाल और सफेद सितारे बरकरार रहे
किस्म-किस्म के प्रवेशपत्रों की
ढेरी पर
तौले जाते रहे।
मुझे खुशी है कि मैं तुम्हारे साथ हूँ—
खुश हूँ
कि तुम मेरी टेबल पर बैठे हो।
तुम्हे यह सगति
किस तरह नि शब्द छोड जाती है।
तो अब बताओ
तुम्हारी वह ओल्गा ?[2]
कौन थी
क्षमा करना, वह ओल्गा नही थी।
वह तत्याना के नाम अन्येगिन का पत्र था।

---

[1] रूसा भाषा में सहकारी चीनी उद्योग का सक्षिप्तीकरण।
[2] पूश्किन के 'येवगेनी अन्येगिन' के मुख्य पात्रो मे से एक।

किस तरह शुरू होता था ?

इस तरह
"तुम्हारा पति
काठ का उल्लू है।
मैं तुमसे मोहब्बत करता हूँ
गोया तुम हमेशा मेरी रहोगी।
रोज सुबह वादा करो
दिन को मिलूँगी।"
सबकुछ होता रहा
और खिडकी के नीचे
एक खत
(और शर्म की एक घबरायी-सी लहर)
आह,
मगर जब आह करना भी सम्भव न हो
तब
अलेक्सान्द्र सेर्ग्येइविच,
सह सकना और भी मुश्किल हो जाता है।
इधर आओ, मयाकोव्स्की।
बढे चलो दक्खिन की ओर।
जोर दो दिल पर,
मिलाओ तुक—
लो—
प्रेम भी समाप्त हो चला।
प्यारे व्लदीमिर-व्लदीमिरोविच।
नही,
इसे सठियाना नही कहते।
अपना स्थूल शरीर
अपने आगे

ढकेलता हुआ
मैं
सहष
दोनो को सम्हाल लूँगा
और अगर बिफरा
तो तीनो को।
कहते हैं वे—
कि मेरी कविताएँ वै य क्ति क है।
(आपस की बात है)
अन्यथा, सेंसर की निगाह न पड जाय,
वे कहते है मैं तुम तक पहुँचाता हूँ
उन्होने
केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के दो
सदस्यो को
प्रेम मे रँगे हाथो पकडा है
यह है वह तर्ज
जिसमे वे खुसुर-पुसुर करते है,
प्लीहा को
अभिव्यक्ति देते है।
उनकी बातो पर ध्यान न दो
अलेक्सान्द्र सेर्ग्येइविच
बहुत सम्भव है
कि मैं ही रह गया हूँ
जिसे इस बात का सचमुच ही दुख हो
आज तुम जीवित नही हो।
मैं कितना चाहता था
कि तुम जीवित होते
और मैं तुममे घण्टो बातें करता।

जल्द ही
मैं भी मर जाऊँगा, और मौन हो जाऊँगा।
मृत्यु के बाद हम दोनो
अगल-बगल खडे होगे
तुम 'प' की कतार मे।
मैं 'म' की।
हम दोनो के बीच कौन (खडा) है ?
मुझे किसकी सोहबत मे रहना होगा ?
मेरे देश मे कवियो का
बेहद अकाल है।
मेरे और तुम्हारे बीच,
कम्बख्त तकदीर ने यही चाहा था
कि नादसोन[1] खडा हो।
ठीक है,
हम यह कहेगे
कि उसे यहाँ से हटाकर
'ज्ञ' मे भेज दिया जाय।
इधर नेक्रासोव[2] है
कोत्या
स्वर्गीय अल्योशा का बेटा।
उम्दा ताश खेलता है,
कविता भी अच्छी लिखता है,
यही नही उम्दा दिखता है।
जानते हो उसे ?
बढिया लौण्डा है—

---

१ रूसी कवि (१८६२ ८७) जिसने ह्रासोन्मुखी कविता को प्रभावित किया।
२ प्रख्यात रूसी कवि (१८२१-७७)।]

खूब निभेगी उसे यही खड़े रहने दो ।
बुरा सौदा नही है, मैं उनमे से थोक,
आधे तुमको दूगा, आधे रख लूँगा ।
जमुहाई लेते हुए
(मेरे) जबडे तडक रहे है ।
मुँह फाडे हुए हैं—
दोरोगोइचेन्को,
गेरासिमोव,
किराल्लोव,
रोदोव,[1]
कैसा एकरस है यह दृश्य ।
लो, वह रहा येस्येनिन ।
गँवई किसान
हास्यास्पद ।
एकदम गऊ
चमडे के दस्ताने मे कैद
उसे एक बार सुनो
तय है कि वह भीड से आया है ।
बललाइका वादक ।
जिन्दगी पर भी कवि की
पकड होनी चाहिए ।
हमारी बात और है, पोल्तावा की शराब की तरह
हम लोग तगडे है ।
ठीक,
बेंजिमोन्स्की के बारे मे क्या सोचते हो ?
हूँ, ऐसा ही है ।
बुरा नही है ।

---

१ मयाकोव्स्की के समकालीन कवि ।

काफी न हो तो उसकी चुस्की ले सकते हो।
सच है,
हमारे पास अस्येयेव[1]
कोल्का है।
चलेगा।
उसकी भी पकड मुझ जैसी पक्की है।
मगर उसे
रोज़ी कमानी है
परिवार के लिए, जो कितना भी छोटा हो,
आखिर परिवार है।
अगर तुम जिन्दा होते
तो 'लेफ'[2] के सहायक सम्पादक होते।
मैं तुम्हे सौंप सकता था
पोस्टर का काम भी।
तुम्हे दिखाता
तुम खुद अपनी आखो देखते, यह किसका प्रचार है
तुम ज़रूर बना लेते
तुम्हारे पास उम्दा शैली है।
मैं तुम्हे देता रग
और कैनवास
तुम बनाते इश्तिहार
'सुपरबाजार'।
(मैं तुम्हे
नाजिर-हाजिर करने
आदिम छन्दोबद्ध
स्तुति कर सकता था)

---

१ सोवियत कवि और मयाकोव्स्की का दोस्त।

२ मयाकोव्स्की द्वारा सम्पादित पत्र।

मगर आज
उन छन्दो के खेल का
समय नही।
अब हमारी कलम
कलम नही है सगीन है
छुरी-काँटा है, धारदार है।
क्रान्ति की लडाई
पोल्तावा[1] से कही सगीन है।
और प्रेम
अन्येगिन[2] के प्रेम से
कही शानदार है।
खबरदार, पूश्किनपन्थियो से बचो,
सठियाये
कलमघिस्सू,
सडे हुए, जक।
देखो तो उधर
पूश्किन 'लेफ' की तरफ
मुड पडा है।
काला नीग्रो
देरझाविन से
होड कर रहा है
उफ।
मैं तुमसे प्रेम करता हूँ
मगर शव से नही
तुमसे सजीव।
लोगो ने तुम्हे

१ पोल्तावा के युद्ध पर पूश्किन की कविता।
२ पूश्किन की काव्यगाथा 'येव्गेनी अन्येगिन' का मुख्य पात्र।

किताबी रौगन से मढ दिया है।
कोई बात नही मैं
प्रेम मे शर्त बद सकता हूँ।
तूफानी,
अफ्रीकी सन्तान।
वह अभिजात कुत्ता,
सूअर का बच्चा दान्तेस।
हम उससे पूछते
"क्यो बे, कौन है तेरा बाप ?
१६१७ के पहले
तू क्या करता था ?
बता अपना खानदान।"
साफ-साफ कह दू
उसके बाद नजर नही आता
वह दान्तेस।
मगर यह सब क्या बकवास है ?
अध्यात्म तो नही ?
कहा जाय तो
आत्मसम्मान का गुलाम
बन्दूक की गोली से मारा गया
जिस चीज़ की
आज भी कोई कमी नही
वे हैं
हमारी बीवियो को सूघते हुए हर किस्म के शिकारी।
यहाँ सोवियतो के इस देश मे
अच्छा है।
आदमी सलामत रह सकता है।
और आदमी खुशी से काम कर सकता है।

दुख केवल इतना ही है
कि कवि नही हैं—
हालांकि
बहुत सम्भव है
हमे उनकी जरूरत ही न हो
अच्छा, वक्त समाप्त हो चला
सुबह की लम्बी-लम्बी किरणे
रँग चली आसमान ।
मैं नही चाहता
कि सिपाही आ पहुँचे "तू-तू मैं-मैं" करे ।
हम तुमसे बिल्कुल अभ्यस्त हो चुके है ।
अत , आओ, मैं तुम्हारी मदद करूँ
फिर से तुम्हे चबूतरे पर स्थापित कर दूं ।
सरकारी तौर पर
मेरी भी मूर्ति स्थापित होनी चाहिए थी ।
मगर मैं उसमे बारूद
भर देता
और
धडाम ।
मैं हर किस्म की मृत्यु से
नफरत करता हूँ ।
मैं हर किस्म के जीवन से
प्रेम करता हूँ ।

(१९२४)

सेर्ग्येइ येस्येनिन

अनु० राजीव सक्सेना

मृतक के लिए प्रार्थना

(एक अश)

बिगुल बज रहा, अनिष्टकारी बिगुल बज रहा,
हम क्या करे, बताओ, हम क्या कर सकते हैं
कीचड सनी हुई कूल्हो-सी इन सडको पर ?

समय आ गया, छोडें अब हम भौदूपन का भाव-प्रदर्शन,
चाहो या ना चाहो, आगे बढो, सीखना, होगा अब तो सीखो,
अच्छा है, इस समय झुटपुटा चिढा रहा है अब मुँह तुमको
और भोर की झाड़ू अब हो गयी उधर लोहू से तर
मार तुम्हारी बडी मुटल्ली पदी पर बरसा-बरसाकर।

जल्दी ही यह हलका पाला रँग जायेगा झक सफेद चूने के रग से,
यह छोटा सा गाँव और ये चारागाहे है इस ढग से,
जहाँ नही हम छिप सकते है कभी काल की दीठ बचाकर,
और न ही हम भाग सकगे किसी तरह अपने दुश्मन को पीठ
दिखाकर,
अब तो वह आ गया यही पर फैलाये लोहे का जबडा,
पजा फैला दिया, गला अब उसने मैदानो का पकडा।

बूढी चक्की खडी हुई है कान हिलाती,
पिसे हुए आटे की गन्धो की पहचानें सी पैनाती,
पिछवाडे खामोश खडा जो वैल हमारा,
जिसने सारा प्रेमभाव बछडो पर वारा,
जीभ साफ करता खूटे से रगड-रगडकर,
भाँप रहा दुख की आँधी आती खेतो पर।

आह, गाव की सीमा के बाहर क्या इस ही कारण
रोता दुखियारा अकार्डियन,
ट—ला—ला—ला   टिली—ली—गुम,
खिडकी की सफेद देहरी पर घुमड रही धुन
और शीत की झझा पीली,
क्या नही इसलिए धारण करती है आभ लाल-नीली,
और शुरू होता मेपल के पत्ते झरना,
जसे तेज कतरनी से घोडो के वाल उतरना ?

आता है लो आता है वह दूत भयकर,
झाडियाँ और झखाड रौदता लौह चरण धर,
और मेढको की टर-टर धुन पर,
पहले से भी अधिक थके हो उठते गीतो के स्वर
ओ विद्युत युग की भोर,
चिमनियो और चक्को की घातक जकडन,
ये झोपडियो के पेट वने लकडी के, जो करते चर-मर,
काँप रहे हैं इस्पाती बुखार से थर-थर।

क्या देखी है कभी ट्रेन वह,
दौड लगाती है जो लोहे के प
इन स्तपियो के पार कभी

झील धुन्ध मे, अपने इस्पाती नथुनो से
धुआँ छोडती फुफुआती है।

उसके पीछे ऊँची-ऊँची घास लाँघता,
आता है वह टट्टू पतली टाँगो से फलाँगता,
दौड लगाता बदहवास-सी किसी होड मे,
भाग ले रहा मानो वह आखिरी दौड मे।

वह मूरख मदमाता,
कहाँ जा रहा दौड लगाता ?
पता नही क्या उसे कि जीवित घोडे सारे
उन लोहो के घोडो से हैं कबके हारे,
पता नही क्या उसे कि इन बेरौनक मैदानो मे दौड लगाकर,
वापस ला न सकेगा वे दिन,
जब वे पेचेनेग[1] लोग करते थे एक-एक घोडे के बदले सौदा
दो-दो रूसी सुन्दरियो का।

बदल गया है समय, हमारे नदी सरोवर,
जाग गये है खनक धातुओ की सुनकर
आज खरीदे जाते हैं रेलो के इजन,
घोडो का सैकडो-हजारो पूद[2] गोश्त और चमडा देकर।

अनचाहे मेहमान, भाड मे जायें सारे नाज तुम्हारे !
साथ न देंगे कभी तुम्हारा गीत हमारे,
काश, कभी तुम भी डूबे होते रस मे अपने बचपन मे,

१ पेचेनेग तुर्की मूल का प्राचीन कबीला जो ९वी से ११वीं सदी तक दक्षिण-पूर्वी यूरोप में घूमने फिरते थे।

२ पूद १६ किलोग्राम के बराबर एक रूसी तौल।

जैसे घडा कुएँ मे डूब खीच लेता जल अपने अन्दर,
वे रह सकते हैं खडे देखते इस दुनिया को तटस्थ बनकर
टिन प्लेटो के चुम्बन से अपने मुँह रँगकर।
किन्तु यहाँ पर मैं हूँ चारण और आज है मुझको गाना,
अपनी इस प्रियतमा भूमि का गान सुहाना।
कारण तो है यही कि इस निमला सितम्बर मे झर झरकर,
इस सूखी ठण्डी चिकनी माटी पर
टपकाता है लहू बेरियो से यह तरु रोवन
लकडी के बाडे से अपना सिर टकराकर।
गहरी जडे जमाये बैठा दद इसी कारण
उस धुन मे जो गूँजा रहा है अकार्डियन,
और सडे भूसे से गँधियाता किसान
गुमसुम बैठा धुत्त नशे मे अपने आँगन।

(१९२१)

मुझे कोई खेद नहीं

मुझे न कोई खेद है, न मैं मचाता हूँ चीख-पुकार, औ
रोत

सबकुछ गुजर जायेगा, सेब के सफेद फूलो के समान,
और सुनहले मुरझाव के चगुल मे फँसकर,
मैं नही रह पाऊँगा जवान।

ठण्डे स्पर्शों के बाद मेरे दिल मे,
फिर नही होगी पहले ही जैसी धडकन,

और श्वेत भोजवृक्षो की भूमि मुझे
नही दे पायेगी नगे पॉव चहलकदमी का प्रलोभन।

आह, घुमक्कडी का चाव ! ठण्डे होते जाते है दिनोदिन,
तुमने दहकाये थे जो मेरे अधरो पर अगार,
आह, मेरी गायब हुई ताजगी, आँखो का नटखटपन,
वासन्ती नदी-जैसी भावो की तूफानी धार।

मेरी आकाक्षाएँ करने लगी है अब और अधिक परहेज,
ओ मेरे जीवन, तुम थे क्या स्वप्न-भर,
लगता है, जैसे मैं सरपट भागा था गुलाबी-से घोडे पर,
चहचहाती वासन्ती भोर एक यात्रा पर।

हमको, हाँ, हम सबको मरना है इस फानी दुनिया मे
मेपल वृक्षो से झरता है चुपचाप पत्तियो का ताम्रवर्णी क्षय,
इसलिए जो कुछ आया है फूलने-फलने और मिटने
उसके कल्याण की कामना करो, और बोलो सदा उसकी जय !

(१९२४)

प्राणो की विशेष पहचान

जन्मकाल से ही होती है हर प्राणी की
अपनी ही पहचान,
अगर न होता कवि तो शायद होता मैं कोई तस्कर या
धोखेबाज महान।

"कुछ भी नही जरा पत्थर से ठोकर खाकर लुढक गया था,
हो जायेंगे कल ये बिल्कुल ठीक, घाव हैं साधारण-से ।

(१९२४)

कचालोव[1] का कुत्ता

जिम, इस तरफ बढाना अपना पजा प्यारा-प्यारा,
अब तक कभी नही देखा है पजा ऐसा सुन्दर,
आओ, जब तक चाँद गगन मे तब तक दोनो मिलकर भूँके,
इस सुहावने और शान्त मौसम पर ।
जिम, इस तरफ बढाना अपना पजा प्यारा प्यारा !

प्यारे दोस्त, मुझे चाट मत, मुझमे क्या है,
आओ, कोशिश करें, समझ लें कुछ बाते साधारण,
तुम्हे पता है नही कि जीवन क्या है, जीना क्या है,
क्यो जीने के योग्य हुआ करता है जीवन ।

बहुत भला है और ख्यात भी तेरा स्वामी,
बहुत अतिथि आया करते हैं उसके घर पर,
वे सहलाते मखमल-जैसे बाल तुम्हारे,
अधरो पर मुसकान धारकर ।

तुम विश्वस्त, बडे ही भले और भोले हो,
श्वान रूप मे मायावी सौन्दर्य तुम्हारा छूता मन को,

१ कचालोव (१८७५ १९४८) प्रसिद्ध रूसी अभिनेता थे ।

कोई चाहे या कि न चाहे, तुम तो पूछे बिना किसी से
सदा नशे मे धुत्त दोस्त की तरह चूमते हो हर जन को ।

प्यारे जिम आया करते हैं जाने कितने
मित्र तुम्हारे घर मे अक्सर,
किंतु कभी क्या वह दुखियारी
आयी भी है राह भूलकर ।

तुम्हे रहे विश्वास एक दिन वह आयेगी
जब मैं होऊँगा अनुपस्थित,
तब उसकी आँखो मे झाँक, चूम लेना उसका करतल,
क्योकि सभी कुछ हुए अनहुए का दोषी मैं ही हूँ निश्चित ।

(१९२५)

मैंने सराफ से पूछा

मैंने पूछा उस सराफ से
देता जो आधे तुमान के बदले रूबल,
कैसे कहूँ फारसी मे सुंदर लैला से,
शब्द 'प्यार' सा नाजुक कोमल ।

मैंने पूछा उस सराफ से, वान तरगो
जैसे हौले, मन्द पवन से कोमल स्वर मे,
कैसे कहूँ फारसी मे सुन्दर लैला से,
'चुम्बन'-जैसा शब्द कि जो गूजे अन्तर मे ।

और पूछ ही बैठा मैं फिर उस सराफ से,
अपनी हया कही दिल मे गहरे दफनाकर,
कैसे कहूँ फारसी भाषा मे लैला से,
"तुम मेरी हो, केवल मेरी हो ओ सुन्दरि !"

वह सराफ थोडे-से शब्दो मे यो बोला,
"चर्चे किये नही जाते है कभी प्यार के,
सिर्फ भरी जाती है आहे वीराने मे,
नयन दमकते है नीलम-से गम सँवारते ।

"नाम नही होता है कोई भी चुम्बन का,
वह तो नही कब्र पर अकित अक्षर,
सुख गुलाबो-सा होता है नाजुक चुम्बन,
पखुडिया घुल जाती है होठो पर ।

"प्यार किसी भी आश्वासन की माँग न करता,
उसके साथ सदा रहते हैं सुख दुख के पल,
जो हाथ उठा सकते है बुर्का सिर्फ वही तो
कह सकते है 'तुम मेरी हो, मेरी केवल' ।"

(१९२५)

कवि

कवि होना ऐसा है जैसे
जीवन के प्रति निष्ठा रखना हर मुश्किल मे,

कोई चाहे या कि न चाहे, तुम तो पूछे बिना किसी से
सदा नशे मे धुत्त दोस्त की तरह चूमते हो हर जन के

प्यारे जिम आया करते हैं जाने कितने
मित्र तुम्हारे घर मे अक्सर,
किन्तु कभी क्या वह दुखियारी
आयी भी है राह भूलकर।

तुम्हे रहे विश्वास एक दिन वह आयेगी
जब मैं होऊँगा अनुपस्थित,
तब उसकी आंखो मे झाँक, चूम लेना उसका करतल
क्योकि सभी कुछ हुए अनहुए का दोषी मैं ही हूँ निरि

(१६२५)

मैंने सराफ से पूछा

मैंने पूछा उस सराफ से
देता जो आधे तुमान के बदले रुबल,
वैसे कहूँ फारसी मे सुन्दर लैला से,
शब्द 'प्यार'-सा नाजुक कोमल।

मैंने पूछा उस सराफ से, बान तरगो
जैसे होले, मन्द पवन से कोमल स्वर मे,
वैसे कहूँ फारसी मे सुन्दर लैला से,
'चुम्बन'-जैसा शब्द कि जो गूजे अन्तर मे।

और पूछ ही बैठा मैं फिर उस सराफ से,
अपनी हया कही दिल मे गहरे दफनाकर,
कसे कहूँ फारसी भाषा मे लैला से,
"तुम मेरी हो, केवल मेरी हो ओ सुन्दरि !"

वह सराफ थोडे-से शब्दो मे यो बोला,
"चर्चे किये नही जाते है कभी प्यार के,
सिफ भरी जाती है आहे वीराने मे,
नयन दमकते हैं नीलम-से गम सँवारते ।

"नाम नही होता है कोई भी चुम्बन का,
वह तो नही कब्र पर अकित अक्षर,
सुख गुलाबो सा होता है नाजुक चुम्बन,
पखुडियाँ घुल जाती हैं होठो पर ।

"प्यार किसी भी आश्वासन की माँग न करता,
उसके साथ सदा रहते हैं सुख-दुख के पल,
जो हाथ उठा सकते है बुर्का, सिर्फ वही तो
कह सकते है 'तुम मेरी हो, मेरी केवल' ।"

(१९२५)

कवि

कवि होना ऐसा है जैसे
जीवन के प्रति निष्ठा रखना हर मुश्किल मे,

कोई चाहे या कि न चाहे, तुम तो पूछे बिना किसी से
सदा नशे मे धुत्त दोस्त की तरह चूमते हो हर जन को ।

प्यारे जिम आया करते हैं जाने कितने
मित्र तुम्हारे घर मे अक्सर,
किन्तु कभी क्या वह दुखियारी
आयी भी है राह भूलकर ।

तुम्हे रहे विश्वास एक दिन वह आयेगी
जब मैं होऊँगा अनुपस्थित,
तब उसकी आखो मे झाँक, चूम लेना उसका करतल,
क्योकि सभी कुछ हुए अनहुए का दोषी मैं ही हूँ निश्चित ।

(१९२५)

मैंने सराफ से पूछा

मैंने पूछा उस सराफ से
देता जो आधे तुमान के बदले रूबल,
कैसे कहूँ फारसी मे सुन्दर लैला से,
शब्द 'प्यार' सा नाजुक कोमल ।

मैंने पूछा उस सराफ से, *बान तरगो*
जैसे हौले, मन्द पवन से कोमल स्वर मे,
कैसे कहूँ फारसी मे सुन्दर लैला से,
'चुम्बन'-जैसा शब्द कि जो गूजे अन्तर मे ।

और पूछ ही बैठा मैं फिर उस सराफ से,
अपनी हया कही दिल मे गहरे दफनाकर,
कसे कहूँ फारसी भाषा मे लैला से,
"तुम मेरी हो, केवल मेरी हो ओ सुन्दरि !"

वह सराफ थोडे-से शब्दो मे यो बोला,
"चर्चे किये नही जाते है कभी प्यार के,
सिफ भरी जाती है आहे वीराने मे,
नयन दमकते हैं नीलम-से गम सँवारते।

"नाम नही होता है कोई भी चुम्बन का,
वह तो नही कब्र पर अकित अक्षर,
सुख गुलाबो सा होता है नाजुक चुम्बन,
पखुडियाँ घुल जाती हैं होठो पर।

"प्यार किसी भी आश्वासन की माँग न करता,
उसके साथ सदा रहते हैं सुख-दुख के पल,
जो हाथ उठा सकते है बुर्का सिफ वही तो
कह सकते है 'तुम मेरी हो, मेरी केवल'।"

(१९२५)

कवि

कवि होना ऐसा है जैसे
जीवन के प्रति निष्ठा रखना हर मुश्किल मे,

मानो खुद उधेड़कर अपनी कोमल चमड़ी,
देना लहू उँडेल अन्य लोगों के दिल मे।

कवि गाता स्वच्छन्द वायुमण्डल का गायन,
ताकि लगे वह विस्तृत व्यापक,
होश नही होता कोयल को अपने दुख, अपनी पीडा का,
वह सदैव गाती है अनथक।

रटता है तोता गुलाम-सा गीत किसी का,
बेचारा टुनटुना खिलौना-सा लगता है तब वह उस पल,
विश्व चाहता गीत तुम्हारे अपने स्वर मे,
फिर चाहे मेढक जैसी टर-टर हो केवल।

वर्जित किया मुहम्मद साहब
ने कुरान मे मदिरा पीना,
किन्तु जाम पर जाम पिये जाता है कविवर,
नही वर्जना मे सीखा है उसने जीना।

अगर कभी कवि पायेगा अपनी प्रेयसि को
अन्य पुरुष की बाहो मे, रँगराती मे,
जीवनदायक जाम ढाल आरक्षित बनकर,
छुरा नही भोकेगा वह उसकी छाती मे।

एक दहकता भाव लिये अति साहसपूर्वक,
बजा सीटियाँ चला जायगा यही सोचता वह अपने घर
"क्या होगा यदि आवारा की तरह मरा मैं,
ऐसा भी होता आया है इस धरती पर।"

(१६२५)

सोवियत रूस

गुजर गया तूफान। बचे है हम थोड़े-से
जो दे रहे पुरानी मैत्री के द्वारो पर दस्तक।
मैं लौटा हूँ अपने इस वीरान गाँव मे,
जहा नही रख सका पाव मैं आठ बरस तक।

किसे पुकारूँ? बोलो, किससे बाँटूँ अपना
यह सुख दुखद कि मैं अब भी हूँ जीवित,
इकपखी लकडी की चिडिया—वही पवनचक्की भी—
खडी हुई है आँखे मूँदे, मौन, अविचलित।

जो परिचित थे वे भी मुझको भल गये है,
कोई भी जानता नही अब मुझे यहाँ पर,
कभी खडा था जहाँ पिता का घर, उस स्थल पर
ढेर राख के, तहे धूल की जमी हुई है पथ से उडकर।

जीवन फिर भी उमड रहा है।
नये पुराने चेहरो का चारो ओर जमाव,
किन्तु मची है उनमे ऐसी भारी भागम-भाग,
मिलता कोई नही कि जिससे मैं कर लेता अभिवादन,
मिली न कोई आख कि जिसमे मिलता स्वागत-भाव।

उठते है मेरे दिमाग मे कितने क्षुब्ध विचार
क्या यह मातृभूमि है मेरी?
क्या बेटा मैं इसका जाया?
लगभग सबके लिए बना मै उदासीन सा एक तीर्थयात्री अनजाना,
जो जाने किम दूर देश से कैसे यहा भटकता आया।

और यही तो हूँ मैं !
एक गाँव का वासी
गाँव ख्यात होगा तो केवल इस कारण—
यही एक बदनाम कलकी रूसी कवि को
जन्मा था किसान माता ने किसी अशुभ क्षण !

किन्तु तभी मेरा विवेक स्वर कहता है मेरे अन्तर से
"ठहरो, सोचो, तुम्हे क्रोध आया क्यो नाहक ?
यह तो एक नयी पीढी की ज्योति किरण है,
जिससे हर घर रोशन है बारौनक !"

"तुम मुरझा से चले, तुम्हारा यौवन बीता,
अन्य गीत गाते आते हैं युवको के दल,
शायद और अधिक दिलचस्प गीत होगे वे उनके
क्योकि गाँव ही नही, आज तो उनका है सारा भूमण्डल !"

ओ मातृभूमि ! मैं कितना हास्यास्पद बन बैठा,
फैली इन खोखले कपोलो पर लाली पपडी-जैसी,
ऐसा लगता है, मेरे सहनागरिको की भाषा मुझसे
बनी अजनबी और बन गया मैं स्वदेश मे ही परदेशी ।

मैंने देखा
रविवारीय वेशभूषा मे जमा हुए सब गाव निवासी
सामने जिला दफ्तर के, मानो हो वह गिरजाघर,
और एक अनपढ, अनगढ भाषा मे वे बहस कर रहे,
अपने जीवन प्रश्नो पर ।

शाम हो चली। सूय डूबता,
फैल गया है रग सुनहरा इन मटियाले से खेतो पर,
ऊँचे पेड सफेदो के हैं खडे किनारे खड्ड खाइयो के, मानो
वे हो नगे पाँव, या कि बछडे हो खडे द्वार के बाहर।

अधसोये चेहरेवाला वह लँगडा वीर जवान लाल सेना का
माथे पर झुर्रियाँ चढा याद करता सा बातें बीती,
सुना रहा था गर्व भाव से बुद्योनी[1] की कुछ गाथाएँ
कैसे पेरेकोप[2] भूमि उन लाल सैनिको ने थी जीती।

"जो बुर्जुआ भागकर पहुँचे क्रीमिया क्षेत्र मे
उनको हमने खूब छकाया युद्धो के वारे-न्यारे मे,"
सुनते रहे कान लम्बी-लम्बी शाखाओ के फैलाये मेपल के तरु,
साँस रोककर कृषक नारियाँ खडी रही अध-अँधियारे मे।

युवा कृषक वे, और युवा कम्यूनिस्ट लीग के सदस्यगण,
उतर पहाडी से घाटी मे वाद्यमण्डली की धुन पर
गाते हैं देम्यान बेदनी के अनुप्रेरक गीत क्रान्ति के,
भरते अपने हृपनाद की गूँजो से घाटी का अन्तर।

आह, भूमि यह कितनी प्यारी!
क्यो कविता मे मैंने कहा कि हर पल
साथ-साथ था मैं जनता के?
यहाँ न शायद आवश्यकता मेरी कविता की
और न शायद मेरी ही है यहाँ आजकल।

फिर क्या हो?
सदय क्षमा कर देना मेरी मातृभूमि, ओ!

---

१ बुद्योनी गृहयुद्ध काल मे लाल सेना का एक जनरल।
२ पेरेकोप क्रीमिया को मुख्य भूमि से जोडनेवाली पट्टी।

खुश हूँ कि तुम्हारी कुछ सेवा मैं कर पाया,
यद्यपि मेरे गीत नही गाये जाते है आज यहाँ पर,
फिर भी मैं हूँ सुखी कि मैंने मातृभूमि के दुर्दिन मे
उनको था गाया।

जो भी जैसा है, वैसा स्वीकार मुझे है
पहले की ही तरह लीक पर चल सकता हूँ मैं जीवन-भर,
तन-मन-धन सबकुछ वारूँगा मैं अक्तूबर और मई[1] पर
अपनी प्रिय बाँसुरी छोडकर सब कुछ कर दूगा न्योछावर।

इसे किसी को मैं न समर्पित कर पाऊँगा,
चाहे माँ हो या पत्नी हो, या हो कोई मीत,
एकमात्र मुझको वह अपना स्वर देती है
गाती है वह मेरी धुन पर कोमल-मनहर गीत।

नवागतो! तुम फूलो-फलो सदा दिन-दूने रात-चौगुने
मुझसे भिन्न तुम्हारा जीवन, मुझसे भिन्न तुम्हारा स्वर
आज बढ़ूँगा मैं अनजानी-सी मज़िल की ओर अकेला,
शान्त हो गया आज सदा को यह मेरा विद्रोही अन्तर।

पर जिस दिन भी, इस सारे भूमण्डल मे
हो जायेगी जन-जन की शत्रुता तिरोहित,
मिट जायेंगे क्लेश, शोक, सारे आडम्बर,
तब मेरा कवि कर देगा गौरव से मण्डित
दुनिया के इस छठवें हिस्से को जिसका है नाम 'रूस' छोटा-सा।

(१६२५)

---

१ अक्तूबर और मई। अक्तूबर से कवि का मतलब है १६१७ की समाज वादी अक्तूबर क्रान्ति से और मई से वह १ मई के पावन दिन का स्मरण करा रहा है जिस दिन सारी दुनिया में मजदूर अपने भाई चारे का प्रदशन करते हैं।

निकोलाइ ज़बोलोत्स्की

अनु० भारतभूषण अग्रवाल

कला

पेड उगता है
काठ की प्राकृतिक मीनार की तरह।
गोल-गोल पत्ते धारे अग
शाखाओ मे फूट पडते है।
इन्ही पेडो के समूह से
बाँज- कुज बनता है, जगल बनता है,
पर जगल की परिभाषा सही नही होगी
अगर हम सिर्फ उसके रूपाकार को देखे।

गाय का स्थूल शरीर
चार किनारो पर टिका
जिस पर एक मन्दिर-नुमा सिर है
और दो सीग (सप्तमी के चाद की तरह)
वह भी अबूझ रहेगा
वह भी दुर्बोध रहेगा
अगर हम भूल जायें
सारे विश्व के प्राणियो के नक्शे मे
उसका अथ।

घर, काठ का एक ढाँचा, मानो पेडो की कब्रगाह,
मत देहो से बनी झोपडी की तरह
लोथो के मण्डप की तरह
मर्त्यो मे उसे कौन समझ सकता है
जीवितो मे उसे कौन अनुमान सकता है
अगर हम उस मनुष्य को भूल जाये
जिसने उसे काटा और बनाया।
मनुष्य, धरती का शासक,
जगलो का प्रभु,
गोमास का सम्राट,
दुमजिले घर का विश्वकर्मा,
वही धरती पर राज करता है,
वही जगलो को काटता है
वही गाय का वध करेगा
पर वह एक शब्द भी नही बोल पाता।

और मैं, एक नीरस मनुष्य—
मैंने एक लम्बी चमकदार बाँसुरी ओठो पर रखी
उसमे फूँक मारी, और मेरी सासो से
ससार मे शब्द लहरा उठे, नाना रूप धरकर।

गाय मेरे लिए खिचडी पकाती थी,
पेड मुझे एक कहानी पढकर सुनाता था,
और ससार के मुर्दा घर
उछल रहे थे, मानो वे जीवित हो।

(१९३०)

पतझर

जब दिन जाता बीत, और जब स्वय प्रकृति भी
नही चाहती है उजियाला,
पतझर के विशाल परकोटे
खुली हवा मे लगने लगते सुघर घरो-से।
जिनमे बसते बाज, बसेरा लेते कौए,
और प्रेत-से ऊपर मँडराते है बादल।

निचुड चुका है सब रस पतझर के पत्तो का
सारी धरती पटी पडी है। दूर कही पर
रँभा रहा है कोई एक बडा चौपाया
कोहरे-ढँके गाँव को जाता मन्थर गति से।
बैल, बैल ! क्या, क्या अब तुम राजा नही रहे हो ?
मेपल के पत्ते पुखराज सदृश लगते हैं।

ओ पतझर की आत्मा, मुझको कलम उठाने का बल दो तुम !
हीरा है समीर की सरचना मे कोई।
बैल मोड पर सहसा अन्तर्धान हो गया,
और सूय का पिण्ड लटकता है धरती पर
कोहरे मे लिपटे गोले सा।
और धरा की कोर झलकती लाल रक्त सी।

पलको मे से अपनी गोल आँख मटकाता,
एक बडा पक्षी उडता आता है नीचे।
उसकी गति मे मानव का अनुभव होता है
कम-से-कम, वह छिपा हुआ है

दो चौडे पखो के बीच बीजवत ।
एक भृ ग ने खोल दिया है पत्तो मे अपना नन्हा घर ।

पतझर का स्थापत्य । व्यवस्था जिसके भीतर
अन्तरिक्ष की, कुज नदी की,
परिपाटी पशुओ की, जन की ।
उडते हुए हवा मे छल्ले
और पत्तियो के वे टूसे, और उजाला उसका न्यारा—
उसकी ये निशानियाँ हम पसन्द करते है ।

एक भृ ग ने खोल दिया है पत्तो मे अपना नन्हा घर
झाँक रहा है बाहर अपने नन्हे-नन्हे सीग निकाले,
तरह-तरह की जडे खोदकर
ढेर लगाता है वह उनका ।
अब वह अपना सीग बजाता
फिर ओझल होता है छोटी-सी मूरत-सा ।

लो फिर चलने लगी हवा । जो कुछ निर्मल था,
विस्तृत, चमकदार या सूखा
अब सबकुछ भदरग हो गया, अप्रिय, धुँधला,
और अदर्शन । धुआँ हाँकती आती आँधी
चक्रवात से पत्तो की ढेरी बिखराती
और धरातल को चूरे की तरह उडाती ।

और प्रकृति सारी अब हिम होने लगती है
मेपल का पत्ता तावे सा
बज उठता है नन्ही टहनी से टकराकर ।

और जान ले हम यह है संकेत प्रकृति का
जो वह हमे दे रही है अब
एक नयी ऋतु के प्रवेश पर।

(१९३२)

बिथोवेन

जिस दिन प्रकट हुए स्वर सामजस्य तुम्हारे
श्रम की कम-भरी उत्तेजक जगती मे से
प्रभा प्रभा पर छायी, घन के पार गया घन
वज्र वज्र से मिला, मिला तारे से तारा।

वशीभूत होकर प्रचण्ड उस उत्प्रेरण के
वज्र-प्रकम्पित झझा-पूरित स्वर-ग्रामो मे
तुम उत्तीण हुए बादल के सोपानो पर
और छू लिया भुवनो का सगीत अनूठा।

बाँसुरियो के वन, तानो की पुष्करिणी से
तुमने जीतो उग्र प्रभजन की कर्कशता
स्वय प्रकृति के कानो मे आवाज़ लगायी
ठेल व्याघ्र मुख अपना बाघराज के भीतर।

सावभौम इस अन्तरिक्ष के सम्मुख तुमने
अपनी वह आवाज भरी इतने विचार से

प्रकटा शब्द शब्द से भैरव घोष उठाता
और बना सगीत व्याघ्र-मुख के किरीट-सा

वीणा बजने लगी दुबारा वृषभ श्रृग मे
बनी गडरिये की बासुरी गरुड की हड्डी
और किया आयत्त विश्व सम्मोहन तुमने
मगलमय को किया विविक्त अमगलमय से।

और नवम हिल्लोल उठा स्वर के पखो पर
शान्त विश्व पर तिरता नक्षत्रो मे पहुँचा
करो अनावृत हे विचार! सगीत शब्द बन
प्राणो मे बस जाये, विश्व को विजय प्राप्त हो!

(१९४६)

अन्धा

नभ की ओर उठाकर चेहरा
और शीश अपना उघाडकर
किस्मत का मारा यह बूढा
खडा हुआ है दरवाजे पर।
दिन-भर गाता रहता है वह
क्रुद्ध-दुखी उसका कातर स्वर
प्राणो पर प्रहार करता है
पथिक ठिठक जाते हैं पल-भर।

उसके चारो ओर मचा है
युवा पीढियो का कोलाहल
बागो मे खिलखिला रहे है
उन्मद नील कुसुम दल के दल।
श्वेत कन्दरा मे जामुन की
दिवस चिलचिलाता चुंधियाता
आसमान में चढता जाता
चाँदी के पत्तो पर पग धर।

लेकिन तुम क्यो ओ अन्धे नर
अश्रु बहाते हो यो झर झर ?
क्यो मधुऋतु के मध्य व्यथ ही
होते हो अकाक्षा कातर ?
गत आशा का चिह्न न कोई।
श्याम गत होगा क्या आवृत
पतझर के पीले पत्तो मे ?
खुल न सकेंगे नेत्र अर्ध-मृत।

किसी बडे नासूर सदृश ही
है तेरा यह सारा जीवन
नही सूर्य के प्रेम-पात्र तुम
प्रकृति नही देगी अपनापन।
तुमने सीख लिया है जीना
चिर शाश्वत कोहरे के भीतर
सीख लिया है आख गडाना
सदियो के तम के चेहरे पर।

और सोचते भी डरता हूँ
कि मैं प्रकृति के किसी छोर पर
इसी अन्ध की भाति खडा हूँ
चेहरा नभ की ओर उठाकर।
अन्तर के अँधियारे मे ही
देख रहा हूँ मधु के निझर
उनसे हिलमिल बतराता हूँ
पर उदास मन के ही भीतर।

उफ! कितना दुख होता मुझको
पार्थिव बाते देख-देखकर
आदत के कोहरे मे लिपटा
हड्वडिया मैं, दुष्ट, बेखबर।
यो तो मेरे गीत जगत ने
गाये हैं कितने मौको पर।
पर जीवन्त गीत रचने को
कैसे लाऊँ शब्द खोजकर?

ओ निमम कविता की देवी!
ले जाती हो किधर कहा पर
मेरी विस्तृत मातृभूमि के
महापथो मे मुझे खीचकर?
नही, नही, मैंने कब चाहा
तुमसे कर लेना गठबन्धन
कभी नही चाहा था मैंने
मानू मैं तेरा अनुशासन

मेरा वरण किया खुद तुमने
बेध दिया है मेरा अन्तर
तुमने ही तो मुझे दिखाया
अद्‌भुत चमत्कार धरती पर
तो फिर गाओ अन्धे मानव !
रात उतरती है क्रम-क्रम कर
टिमटिम चमक रहे हैं तारे
नभ मे गुजित कर तेरे स्वर।

(१६४६)

नहीं खोजता हूँ मै सामजस्य प्रकृति मे

नही खोजता हूँ मैं सामजस्य प्रकृति मे।
तर्कपूर्ण अनुपात विविध तत्वो के भीतर
चट्टानो की आँतो मे या निर्मल नभ मे
मुझे नही मिल पाया हाय, अभी तक कोई।

कैसी अल्हड है आदिम वन-सी यह धरती !
प्रखर समीरण के प्रचण्ड गर्जन-तर्जन मे
मुझे नही सुन पडते कोई सम्वादी स्वर,
मुझे नही अनुभव होती ध्वनि की समरसता।

किन्तु शारदीया सन्ध्या की शान्त घडी मे,
जब सुदूर पर पवन ठहर जाता निढाल-सा,

जब, झीने से उजियाले मे देह समेटे,
अन्ध निशा चल देती है सरिता के तट पर,

जब मानो अपने विक्षुब्ध वेग से थककर,
चूर-चूर होकर कठोर औ निष्फल श्रम से
श्यामल जल धीरे-धीरे थिर हो जाता है
विकल सुपुप्तावस्था मे विश्रान्ति काल की,

भरी असगतियो से जब विराट यह जगती
अपनी निष्फल क्रीडाओ से तुष्ट-तप्त हो
किसी गर्त से उभर-उभरकर मेरे सम्मुख
छा जाती है मानवीय पीडा के आद्य रूप-सी गोया।

और उस समय निश्चल-सी अवसन्न प्रकृति भी
लेटी होती है चहुँ ओर उसासे भरती,
सयमहीन मुक्ति मे मिलता हुए न उसको
अशुभ और शुभ जिसमे अविच्छिन्न होते है।

और देखती है सपना विद्युत यन्त्रो का,
निष्ठापूर्ण परिश्रम के सतुलित शोर का,
बासुरियो की तान, बाँध के उजियाले का,
या बिजली की लहरो से पूरित तारो का।

तब अपनी शय्या पर गहन नीद मे सोयी,
वत्सल पर विक्षिप्त विसुध माता का अन्तर
अपने शिशु के उन्नत जग मे रम जाता है,
ताकि सूर्य के साथ साथ मुने को देखे।

(१९४७)

सूक्ष्म, विलक्षण, गूढ, हास्यकर और अनोखी
कविता जो लगभग कविता-सी नही दीखती
झीगुर की झनकार और शिशु की तुतलाहट—
लेखक ने इन पर कैसा वश प्राप्त किया है!

वैसे असम्बद्ध शब्दो की यह दुरवहता
कुछ विशिष्ट सुकुमार भावना उपजाती है
लेकिन क्या यह सचमुच सम्भव है, खो जायें
इन खेलो मे, मानव के स्वप्नो को तजकर?

क्या सम्भव है रूसी भाषा के शब्दो को
गिलगिलिया की चहचह मे परिवर्तित करना
ताकि प्रकट ही हो न सके उनके भीतर से
जीवनदायी तत्व, अर्थ-गौरव की महिमा?

नही, कपोल कल्पना मे कविता बाधक है।
कविता से क्या काम उन्हे जा करते आये
शब्दो से खिलवाड पहन जादू की टोपी!

जो सचमुच वास्तव जीवन जीता आया है
बचपन से ही जिसका कविता से परिचय है
बना रहेगा उसका दृढ विश्वास निरन्तर
जीवनदायी प्रज्ञामय रूसी भाषा पर।

(१६४८)

सारस

चले छोड जो अफ्रीका वैशाख मे
सारस अपने पितृदेश के तटो को
पक्तिवद्ध वे दीघ त्रिभुज के रूप मे
उडे जा रहे थे गहरे आकाश पर।

अपने चादी के-से पख पसारकर
नभ के उस पूरे विस्तीण वितान मे
उनका नेता अपने लघु जन के लिए
दिखा रहा था वैभव घाटी की दिशा।

पर जब उनके पखो के नीचे कही
पारदर्शिनी झील एक सहसा दिखी
तभी एक काला थूथन मुह फाडकर
उठा झुरमुटो मे से उनकी ओर को।

एक किरण ने वेधा पक्षी का हृदय
लपट उठी, सहसा झपटी, फिर बुझ गयी
और गौरवान्वित गरिमा का एक कण
ऊपर से नीचे हम पर आकर गिरा।

दो विषाद से भारी उसके पख दो
शीत लहर का आलिगन करने लगे,
प्रतिध्वनित कर उस दुख-भरे विलाप को
सारस का दल छूटा ऊपर की तरफ।

विचर रहे नक्षत्र जहाँ हैं बस वही
अपने पाप-कृत्य के प्रायश्चित्त को
स्वय प्रकृति ने फिर उनको लौटा दिया
मृत्यु ले गयी थी जो उनसे छीनकर।

प्राणो का अभिमान, यत्न उत्कर्ष का
और अडिग सकल्प जूझने के लिए
वे सारे गुण जिनको पिछली पीढियाँ
भावी सन्तति को, युवजन को सौंपती।

और धातु-मण्डित उनका नेता उधर
धीरे-धीरे डूब रहा था अतल मे
और उषा ने मानो उस पर खीच दी
एक सुनहरी ज्योति-किरण की लीक सी।

(१९४८)

मित्रो की विदाई

चौडी कोरो के हैटो, लम्बे कोटो मे,
कविताओ के पोथे पर पोथे लिख-लिखकर
मिट्टी मे मिल चुके न जाने कब के तुम तो
नील कुसुम की झडी हुई इन शाखाओ से।

रूपाकारविहीन लोक मे रहते हो तुम
जहा सभी कुछ है खण्डित, विश्रृखल, उलझा

आसमान की जगह जहाँ है एक टेकरी
और चन्द्रमा की कक्षा गतिहीन, अचल है।

एक विचित्र और धुंधली भाषा की दुनिया
नीरव कोटो की परिषद् गाती है जिसमे
वही हाथ मे लेकर लालटेन छोटी सी
मित्रो का स्वागत करता है मानव मधुकर।

क्या है शान्त तुम्हारा मानस, मेरे मित्रो ?
सहज और निश्चिन्त ? सभी कुछ भूल गये क्या ?
जडें और चीटिया, घास के तिनके, आहे
और धूल के स्तम्भ आज है बन्धु तुम्हारे।

और बहन हैं नन्हे-नन्हे फूल गुलाबी
नील कुसुम की चूजी, चूजे, खपची-तीली
अब तुममे सामर्थ्य कहा जो याद कर सको
ऊपर छूट गये अपने भाई की भाषा !

अभी न उसके लिए स्थान है उस धरती मे
जहाँ विलीन हो चुके हो तुम छाया बनकर,
चौडी कोरो के हैटो, लम्बे कोटो मे
कविताओ के पोथे पर पोथे लिख-लिखकर।

(१९५२)

मानव चेहरो के सौन्दर्य पर

कुछ चेहरे होते है विशाल द्वार के समान,
लघु से लघु चीज जहाँ लगती हो अति महान।
कुछ चेहरे लगते है मरियल झोपडियो-से,
पकता हो जिगर जहाँ सीलता हो औ'कवाब।
कुछ चेहरे ठण्डे और मुर्दा, सीखचो-जडे
लगता है मानो तहखाने हो अँधेरे के।
और कुछ मानो हो मीनारे—वरसो से
रहता न हो कोई जहाँ, झाँका न हो खिडकी से।
किन्तु एक वार मैंने जानी थी कुटी एक,
निधन-सी, दीखती न थी वह कुछ शानदार,
पर उसकी नन्ही-सी खिडकी से लगातार
ऋतु वसन्त के झोके मुझ तक उड आते थे।
सचमुच यह विश्व वडा अद्‌भुत है, महान है!
चेहरे है यहाँ मानो जय के तराने हो।
धूप-सदृश उनके ही चमकदार सरगम से
स्वर्ग के शिखरो का गीत वन जाता है।

(१९५५)

परिशिष्ट

कवि-परिचय

अलेक्सान्द्र ब्लोक
(१८८०-१९२१)

रूसी सोवियत साहित्य के एक क्लासिक और रूसी प्रतीकवाद के संस्थापक। जन्म पीतसबुग विश्वविद्यालय के परिसर म। पिता एक विधिवेत्ता और माँ पीतसबुग विश्वविद्यालय के रेक्टर तथा प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री बेकेतोव की पुत्री। बचपन सुशिक्षित और सुसंस्कृत वातावरण मे बीता। विद्यार्थी-जीवन म ब्लोक ने रूसी लोकसाहित्य के संस्कृत स्रोतो पर एक लेख लिखा था।

प्रथम प्रकाशित कविता-संग्रह 'सुन्दर स्त्री सम्बन्धी कविताएँ' (१९०५), जिसने कवि के रूप मे ब्लोक को प्रतिष्ठित कर दिया। इस कविता संग्रह मे अभिव्यक्त 'चिरंतन नारी' का बिम्ब कवि की काव्यसाधना का केन्द्र बन गया। किन्तु रूसी प्रतीकवाद की ही तरह ब्लोक की कविता भी यूरोपीय प्रतीकवाद के साथ अधिक समानता नही रखती। विशुद्ध सौन्दर्यवाद से रूसी काव्य, वस्तुत, सदा ही दूर रहा है। १९१५ मे ब्लोक ने 'बुलबुल का बाग' शीर्षक लम्बी कविता लिखी और इसके साथ ही उन्होंने प्रतीकवाद से हमेशा के लिए विदा ले ली। इस कविता म प्राच्य काव्य बिम्बो की झलक स्पष्ट दिखायी पड़ती है।

ब्लोक की ख्याति विशेष रूप से उनकी महान कविता 'बारह' (१९१८) के लिए है जो एक तरह से १९१७ की महान अक्तूबर-क्रान्ति के स्वागत मे रूप म लिखी गयी है। इस कविता के नायक ईसा मसीह हैं जो बारह क्रांतिकारी सैनिको के अगुआ हैं और यातनाओ के विरुद्ध संघर्ष करते हुए न्याय की स्थापना के लिए प्रयत्नशील हैं।

ब्लोक ने कुछ गीतनाट्य भी लिखे हैं जिनम पूश्किन की नाट्यशैली को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया है। उनके तीन गीत-नाटकों का पहला संग्रह १९०८ म प्रकाशित हुआ और फिर १९१६ म 'रंगमंच' नाम से दूसरा संग्रह निकला, जिसमे बाद के नाटक संकलित हैं।

ब्लोक ने सामयिक समस्याओ पर लेख भी लिखे हैं जिनका एक संकलन 'रूस और बुद्धिजीवी' (१९१८) नाम से प्रकाशित हुआ है। इन लेखो म ब्लोक ने बुद्धिजीवियो को महान 'क्रान्ति-संगीत' के श्रवण का आह्वान किया है।

ब्लोक के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ है आन्तरिक लयमयता जो गोया एक खास खण्ड पर आधारित पंक्ति में अन्तर्निहित है, और रूसी स्लाव एवं समस्त भारोपीय संस्कृति के बिम्बों का गहन प्रयोग।

ब्लोक पूश्किन के समान ही उन थोड़े से कवियों में हैं जिनके काव्य की मूल चारुता को किसी भी अनुवाद में सुलभ कराना असम्भवप्राय है।

बोरीस पस्तेरनाक
(१८९० १९६०)

नोबल पुरस्कार से सम्मानित पस्तेरनाक का जन्म मास्को के प्रसिद्ध चित्रकार लेओनीद पस्तेरनाक के परिवार में हुआ था। लेओनीद पस्तेरनाक को लेव तोल्स्तोय की रचनाओं के चित्र बनाने में प्रसिद्धि मिली थी। प्रसिद्ध संगीतकार स्क्रयाबिन भी उनके निवास स्थान पर अपना संगीत सुनाया करते थे। स्वयं पस्तेरनाक की माँ भी एक निपुण पिआनोवादिका थीं। इस प्रकार पितृपक्ष से चित्रात्मकता और मातृपक्ष से ध्वनि संवेदना का मिला-जुला प्रभाव कवि को उत्तराधिकार में मिला था।

पस्तेरनाक का आरम्भिक जीवन एक अत्यन्त सुसंस्कृत वातावरण में बीता था। इस विशिष्ट परिवेश ने उनकी कविता को विकसित होने के लिए एक उन्मुक्त तथा उर्वर पृष्ठभूमि प्रदान की। पस्तेरनाक को विदेशी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। फलतः उनकी कविता का फलक और भी विस्तृत हो गया। 'मेरी बहन ज़िन्दगी' नामक काव्य संग्रह से उन्हें पहली लोकप्रियता मिली। इस संग्रह की कविताओं में जीवन का उल्लास भरा हुआ है। पस्तेरनाक में दैनिक जीवन के छोटे से छोटे अनुभव को कविता में बाँध लेने की अद्भुत क्षमता थी। उनके पास एक ऐसी काव्य-दृष्टि थी जो छोटी से छोटी वस्तु को एक विलक्षण काव्यात्मक गरिमा से भर देती थी।

पस्तेरनाक के भीतर रूस की अभिजात परम्परा की चेतना बड़ी प्रखर थी। अपनी दो प्रसिद्ध कविताओं 'सन १९०५' (१९२६) और 'लफ्टिनेण्ट श्मिट' (१९२७) में उन्होंने रूसी बुद्धिजीवियों की श्रेष्ठ परम्परा की महिमा का बखान किया है। पस्तेरनाक की कविता में एक प्रकार से प्रख्यात रोमाण्टिक कवि ल्यर्मोन्तोव की परम्परा का विकास दिखायी पड़ता है। उनकी रचनाओं में जीवन की गहरी करुणा और चुनौतीभरी रहस्यमयता का अद्भुत मिश्रण मिलता है।

शेक्सपियर के नाटकों और गेटे के 'फाउस्ट' के अनुवाद से पस्तेरनाक का नाम और भी प्रसिद्ध हो गया। उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं के भी अनुवाद किये। वस्तुतः अनुवादक के रूप में पस्तेरनाक ने मूल का शाब्दिक अनुसरण नहीं किया। इसीलिए उनके अनुवाद को अनुवाद न कहकर सह-लेखन कहना अधिक उचित होगा। एक महान कवि और कथाकार होने के साथ-साथ

पस्तेरनाक अपने समय के एक श्रेष्ठ अनुवादक भी थे।

मरीना त्स्वेतायेवा
(१८९२-१९४१)

मरीना त्स्वेतायेवा का जन्म प्रो० इवान व त्स्वेतायेव के परिवार मे हुआ था, जो अपने समय के, भाषा और साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान थे और जिन्होने मास्को मे ललितकला सग्रहालय की स्थापना की थी। उक्त सग्रहालय अब 'पूश्किन सग्रहालय' के नाम से जाना जाता है।

त्स्वेतायेवा ने १६ वर्ष की आयु मे 'पूश्किन प्रतियोगिता' मे छद्म नाम से एक कविता भेजी थी, जिसने प्रसिद्ध कवि वलेरी ब्र्यूसोव का ध्यान आकृष्ट किया। त्स्वेतायेवा का घटनापूर्ण काव्य-जीवन यही से शुरू होता है। उनकी आरम्भिक कविताओ मे युवा कवयित्री की रोमाण्टिक भावनाएँ सुपरिचित बिम्बो के माध्यम से व्यक्त हुई। परन्तु आगे चलकर उनका रुझान रूसी लोकजीवन और लोकगीतो की ओर बढता गया। परिणामत उन्होने अपनी कविताओ मे प्राचीन मन्त्रगीतो की लयो तथा लोकधुनो को पुनर्जीवित किया।

त्स्वेतायेवा की युद्धपूर्व कविताओ मे क्षयोन्मुख बूर्जुआ समाज के अन्तर्विरोधो का तीखा चित्रण मिलता है—यथा 'अखबार पढनेवाले', 'पहाड की कविता' और 'अन्त की कविता' मे। उनकी तत्कालीन अनेक कविताओ मे प्रेम की दुखद स्मृतियो की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है और यह गहरा विषाद का स्वर 'ईर्ष्या का प्रयास', 'कल ही तुमने मेरी आखो में झाँका था तथा मेरी आत्मा के यदि पर होते' जैसी कविताओं मे खास तौर से दिखायी पडता है।

त्स्वेतायेवा की कविताओ में बिम्बो का विलक्षण प्रयोग मिलता है। यथार्थ जीवन से लाये गये ये बिम्ब उनकी कविता को एक वास्तुशिल्प जैसी ठोस मूर्तिमत्ता प्रदान करते हैं। अपने रचनात्मक जीवन के लगभग बीस वर्ष त्स्वेतायेवा ने पेरिस मे बिताये थे। फलत उनकी अनेक कविताओ म 'घर की याद' जैसा एक गहरा सम्मोहन भी मिलता है। इस लम्बे प्रवास के दौरान त्स्वेतायेवा इस विडम्बनापूर्ण स्थिति के प्रति पीडा की हद तक जागरूक थी कि उनकी कविताएँ जहाँ छपती हैं वहाँ उनके पाठक नही हैं और जहा उनके पाठक हैं वहाँ वे छप नही सकती। इस परिस्थितिगत विडम्बना ने त्स्वेतायेवा के काव्य मे अनुभवो की एक ऐसी उथल-पुथल भर दी है, जो उसे अपने समय के साहित्यिक इतिहास में एक विलक्षण अद्वितीयता प्रदान करती है।

मृत्यु आत्महत्या से।

व्लदीमिर मयाकोव्स्की
(१८९३ १९३०)

सोवियत कविता के अग्रगण्य सस्थापकों मे से एक। आरम्भिक शिक्षा एक पब्लिक स्कूल म पायी और फिर मास्को के 'चित्र मूर्ति एव वास्तुकला विद्यालय' मे अध्ययन किया। उक्त अध्ययन का प्रत्यक्ष प्रभाव उनकी कविता के बिम्बो और दृश्यालेखो म दिखायी पडता है।

भविष्यवादियो के निकट सम्पर्क म आने के बाद मयाकोव्स्की ने अपनी आरम्भिक कविताएँ 'आम रुचि के गाल पर तमाचा' नामक सग्रह म प्रकाशित की। परतु मयाकोव्स्की की कविता पर भविष्यवाद का प्रभाव केवल रूपगत प्रेरणा के रूप मे था, वस्तुगत सवेदना के रूप मे नही। उनकी क्रान्तिपूर्व रचनाओ म एक त्रासद गीतात्मकता और बाह्यजगत के प्रति तीखे व्यग्य का विलक्षण मिश्रण मिलता है। इस काल की कविताओ मे एक गहरा अकेलापन मिलता है जो वस्तुत मिथ्या और ढोग के बीच दबे हुए तत्कालीन समाज के भीतर का अकेलापन था।

अपनी प्रसिद्ध कविता 'पतलूनधारी बादल' म मयाकोव्स्की ने आनेवाली क्रान्ति के गहरे सकेत दिये थे। यह कविता क्रान्ति से ठीक एक वर्ष पूर्व अर्थात १९१६ मे पूरी हुई और इस प्रकार इसे उस महान ऐतिहासिक घटना का काल्पनिक दस्तावेज कहा जा सकता है।

सन् १९१८ म मयाकोव्स्की ने 'वामपन्थी अभियान' नामक कविता लिखी जो उग्र अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की चेतना से युक्त थी। उनकी व्यग्य कविता 'नौकरशाह काम पर' के प्रति लेनिन ने अपनी शुभाशसा व्यक्त की थी। सन १९२३ मे उनकी 'इस विषय मे' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई जो निरर्थक भावुकता और ढोग से मुक्त एक सर्वथा नये ढग की प्रेम-कविता थी।

सन् १९२४ से १९३० के बीच मयाकोव्स्की की 'व्लदीमिर इलिच लेनिन', 'अपनी आवाज की सर्वोच्च ऊँचाई पर' तथा 'अच्छा' शीर्षक कविताओ मे क्रान्ति के बाद नवनिर्माण के महान सघर्ष मे जुटे हुए रूस की विराट छटपटाहट एक सहज गीतात्मकता और महाकाव्यात्मक गरिमा के साथ प्रस्तुत की गयी है।

अपने प्रयोगधर्मी नाटको—यथा 'मिस्तेरिया बुफ'—के द्वारा मयाकोव्स्की ने गोगोल की ठेठ तथा अतिशयोक्तिपूर्ण परम्परा को आगे बढाया।

मयाकोव्स्की ने रूसी कविता के नादसौदर्य तथा लयात्मक सम्भावनाओ को अनेक स्तरो पर उदघाटित और विस्तृत किया और पहली बार एक ऐसी कविता को जन्म दिया जिसमे अन्तर्राष्ट्रीय देश प्रेम की ऊष्मा भरी हुई थी।

मृत्यु—आत्महत्या मे।

सेर्गेइ येस्येनिन
(१८९५-१९२५)

सोवियत कविता मे एक क्लासिक का दर्जा रखनेवाले कवि। इनका जन्म र्‍याज़ान क्षेत्र के एक किसान परिवार मे हुआ था। अपने अन्य प्रख्यात समकालीनो से भिन्न ये एक ऐसे कवि थे जो ठेठ किसान की धरती से पैदा हुए थे। इनकी आरम्भिक कविताएँ प्रथम बार सन् १९१४ मे छपी थी, जिन पर कोलयोव और प्रसिद्ध प्रतीकवादी कवि ब्लोक की गहरी छाप थी। इनकी कविताओ मे रूसी ग्राम्य जीवन की सहज और सीधी झलक मिलती है। इन कविताओ की एक रूपगत विशिष्टता यह है कि इनमे ईसाई धर्म के आगमन से पूर्व के लोकगीतो की आत्मा का परम्परागत ईसाई प्रतीको के साथ एक अदभुत सम्मिश्रण मिलता है।

लोकजीवन और लोकगीतो के मूलस्रोतो तक पहुँचने की येस्येनिन के भीतर कितनी गहरी इच्छा थी, यह इस बात से जाना जा सकता है कि उन्होने 'मरीया के सोते' नामक अपने खोजपूर्ण लेख मे रूसी लोकगीतो के प्रतीको के मूल उत्स भारोपीय परम्परा के भीतर ढूढ निकाले थे।

'इनोनिया' शीर्षक अपनी प्रसिद्ध रचना मे येस्येनिन ने अक्तूबर क्रान्ति का प्रशस्तिगान किया था।

येस्येनिन की कविता की एक विशेषता यह है कि वह पूश्किन की कविता की तरह क्रमश सरल और प्रगीतात्मक होती गयी है। येस्येनिन का जीवन अनेक घटनाओ और अफवाहो से भरा हुआ था, जिसे उनके उन्मुक्त प्रेम की दुखद स्मृतियो और विशेषत तत्कालीन यूरोप की विख्यात नर्त्तकी इज़्वेडोरा डंकन के साथ उनके प्रेम-सम्बन्ध ने और विषम बना दिया था। येस्येनिन की प्रेम कविताओ—जैसे 'स्त्री के पत्र', सबकुछ जीवित है', 'न दया करना, न बुलाना, न आसू बहाना' इत्यादि मे एक ओर यदि सूक्ष्म प्रगीतात्मकता है तो दूसरी ओर एक दहला देनेवाली सरलता, जिसे लोकभूमि का सीधा सस्पर्श एक जीवित सन्दर्भ प्रदान करता है। गाय' तथा 'कुत्ते का गीत' जैसी कविताओ मे अचेतन जीवो तथा पदार्थो के प्रति एक गहरे लगाव की सूचना मिलती है, जो येस्येनिन की अपनी विशेषता है। येस्येनिन के काव्य मे फारसी प्रतीको तथा अभिप्रायो का विलक्षण प्रयोग दिखायी पडता है। इसके चलते उनके काव्य को सहज ही एक ऐसा पूर्वीपन मिल गया है, जो उन्हे अपने समय के अन्य कवियो से अलग करता है।

'आन्ना ओन्येगिन' नामक काव्य मे येस्येनिन ने पूश्किन की प्रगीतात्मक प्रबन्धशली को आगे बढाया है—यद्यपि मूलत वह एक प्रगीत तथा प्रेम के कवि के रूप मे ही स्मरण किया जाते है।

निकोलाइ जबोलोत्स्की
(१९०३ १९५८)

जन्म कज़ान के एक किसान परिवार मे। लेनिनग्राद के ग्येर्त्सेन शिक्षा सस्थान से १९२५ मे भाषा तथा साहित्य मे स्नातक की उपाधि। पहला कविता सग्रह 'स्तोलूब्त्सी' १९२९ मे प्रकाशित हुआ, जो काफी विवादास्पद रहा। उससे भी अधिक विवाद उनकी 'कृषि की विजय' शीर्षक कविता (१९३३) पर हुआ और उसे सामूहिक खेती-सम्बन्धी अभियान पर व्यग्य समझा गया। कुछ वर्षों की खामोशी के बाद ज़बोलोत्स्की ने १९३७ म 'द्वितीय पुस्तक' नाम से अपना दूसरा कविता सग्रह प्रकाशित किया। इसके बाद दस वर्षों तक ज़बोलोत्स्की के बारे म कोई सूचना न मिली, सिवा इसके कि उन्हे गिरफ्तार करके साइबेरिया या काकेशिया भेज दिया गया था। १९४७-४८ मे वे साहित्य की दुनिया म पुन प्रकट हुए और पत्रिकाओ मे उनकी कविताएँ दिखायी देने लगी। मृत्यु से एक वर्ष पूर्व १९५७ मे ज़बोलोत्स्की की पुरानी नयी कविताओ को मिलाकर श्रेष्ठ कृतियो का चयन प्रकाशित हुआ जो निश्चय ही एक प्रौढ कवि का कीर्तिस्तम्भ है।

'बदसूरत लडकी' शीर्षक कविता ज़बोलोत्स्की की रचनाओ मे विशेष लोकप्रिय हुई है। इस कविता मे एक ऐसी बदसूरत लडकी की मार्मिक कहानी है जो अपनी कुरूपता से बेखबर हमउम्र बच्चो के साथ खेलती रहती है और कवि के अनुसार वह अन्तत अपने शीलगत आकर्षण के द्वारा कुरूपता पर विजय प्राप्त करती है। वस्तुत इस कविता म यह शाश्वत दार्शनिक जिज्ञासा उठायी गयी कि सौन्दर्य की आत्मा क्या है ?

ज़बोलोत्स्की न प्राचीन रूसी भाषा के प्रथम वीरकाव्य 'ईगर का अभियान-गीत' और प्राचीन गुर्जी साहित्य के महाकवि शोता रुस्तावली कृत 'वित्याज़ व तीग्रोवोइ श्कूरे' (शेर की खाल मे बहादुर) का अनुवाद भी किया है।

दर्शनशास्त्र म ज़बोलोत्स्की की गहरी रुचि थी। आरम्भिक दिनो म उनके दार्शनिक विचार बहुत कुछ नागार्जुन दिङ नाग, धर्मकीर्ति आदि बौद्ध दार्शनिको के समान थे—विशेषत कर्म चक्र सम्बन्धी विचार। इसके बाद उन्होंने अन्तरिक्ष-यात्रा सिद्धान्त के जनक कोन्स्तन्तीन त्सिओल्कोव्स्की के साथ भी पत्र-व्यवहार किया और इस प्रकार मानव जगत तथा अखिल ब्रह्माण्ड मे जीवन की समानताओ के विषय मे उनके दार्शनिक विचारो को अधिक गहराई से जानने का प्रयास किया। ये विचार उनकी कविता मे आकर्षक रूपको और बिम्बो के माध्यम से व्यक्त हुए हैं।

ज़बोलोत्स्की के काव्य की मूल चेतना है प्रकृति तथा मनुष्य के साथ प्रकृति का सम्बन्ध, जो निश्चय ही दार्शनिक दृष्टि की गहनता से मण्डित है। उनका काव्य सघन बिम्ब-योजना और क्लासिकी शिल्प कौशल के कारण रूसी साहित्य मे विशेष स्थान रखता है।

●●●

रूसी कविताओं के ये अनुवाद इस धारणा को निरस्त करते हैं कि सत्ता के यान्त्रिक नियंत्रण में रूसी कविता नारेबाजी और प्रचार-माध्यम मात्र बनकर रह गयी है। अक्तूबर क्रान्ति से पहले के दशक को समेटते हुए बाद की लगभग आधी शताब्दी की रूसी कविता किस तरह काव्यगत उपलब्धियों के साथ साथ कविता से सम्बद्ध प्रश्नों से जूझती रही, इसकी झलक प्रस्तुत कविताओं में मिलती है। इनके माध्यम से यह जान पाना भी कम स्फूर्तिप्रद नहीं कि रूसी कवियों में अपने देश के लिए कैसी आत्मीयता है, भाषा के साथ कैसा सृजनात्मक लगाव है, बहुरंगी प्रकृति के प्रति कैसी अंतर्दृष्टि है तथा सामाजिक नियति के लिए कैसी गहरी चिन्ता और भविष्योन्मुखी आशा है।